RNI:UPHIN/2016/46009
RNP/SHN/18/2022-24

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
ब्रह्मज्ञान ही अमृत है।
सरसावा

तारतम मंजरी

वर्ष ९ अंक ७ जुलाई २०२४ बुद्धजी शाका ३४६ विक्रम सवंत् २०८१ पृष्ठ संख्या ३२

।। परमधाम ।।

।। चितवनी ।।

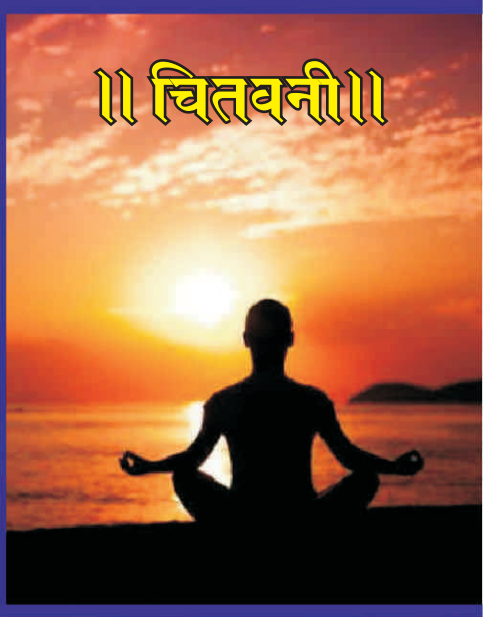

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
नकुड़ रोड़, सरसावा, जिला सहारनपुर–247232 (उ.प्र.)

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ की स्थापना वर्ष 2005 में सरसावा, जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) में श्री राजन स्वामी जी द्वारा की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य ज्ञान, शिक्षा, उच्च आदर्श, पावन चरित्र व भारतीय संस्कृति का समाज में प्रचार करना तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित आध्यात्मिक मूल्यों द्वारा मानव को महामानव बनाना है। इसके साथ ही यह संस्था श्री प्राणनाथ जी की अलौकिक वाणी का प्रकाश फैलाकर सम्पूर्ण विश्व को एक सच्चिदानंद परब्रह्म के प्रेममयी आंगन में भाव-विभोर करने के लिए कृत संकल्पित है। इसके लिए उच्च माध्यमिक शिक्षा प्रदान कर ऐसे विद्वानों को तैयार किया जा रहा है जो संसार को धर्म के वास्तविक स्वरूप का बोध करा सकें और सच्चिदानंद परब्रह्म के साक्षत्कार का यर्थाथ मार्ग दर्शा सकें।

ज्ञानपीठ में उपलब्ध सुविधाओं में मुख्यतः शिक्षा कक्ष, पुस्तकालय व वाचनालय, ध्यान कक्ष, प्रवचन कक्ष, कम्प्यूटर कक्ष, दृश्य-श्रव्य स्टूडियो, छात्रावास, भोजनालय, मुद्रणालय, गौशाला इत्यादि सम्मिलित है।

कालान्तर में ज्ञानपीठ की पन्ना (मध्य प्रदेश), बड़ोदरा (गुजरात), दाहोद (गुजरात) तथा सिक्किम में शाखाएं श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र के नाम से स्थापित की गई हैं जो समाज में ब्रह्मज्ञान का आध्यत्मिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने में निरन्तर कार्य कर रही हैं।

: सम्पर्क करें :

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड़, सरसावा, जिला सहारनपुर-247232 (उ.प्र.)

E-mail : shriprannathgyanpeeth@gmail.com

Website : www.spjin.org • **WhatsApp:** +91 +91 75338 76060

प्रेरणा स्रोत
राजन स्वामी

●

मुख्य संपादक
आचार्य सुभाष
9725389547

●

संपादक
कृष्ण कुमार कालड़ा
9414846972

● ● ●

लेखों में प्रकट किए गए विचार लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं। इनके प्रति प्रकाशक/संपादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र सहारनपुर होगा।

● ● ●

सदस्यता शुल्क

वार्षिक रु. 200/-
आजीवन (10 वर्ष) रु. 1800/-

तारतम मंजरी

वर्ष 9 • अंक 7 • जुलाई 2024 • बुद्धजी शाका 346
विक्रम संवत् 2081

इस अंक में

	सम्पादकीय	**3**
1.	**शिष्टाचार ही मानव जीवन का आधार है** – ब्रह्मलीन आचार्य श्री १०८ धर्मदास जी महाराज	**4**
2.	**धनी के नयन ही धनी के दिल का दरवाजा** – अनिल श्रीवास्तव	**8**
3.	**क्या कृष्ण प्रणामी और निजानंद धर्म एक हैं?** – प्रीतम	**15**
4.	**कर्मयोग ही गीता का प्राण तत्त्व** – डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर	**19**
5.	**क्या निजानन्द सम्प्रदाय हिंदू विरोधी है?** – आचार्य सुभाष	**24**
6.	**लीला – निजलीला** – सुदर्शन तनेजा	**27**

प्रकाशन कार्यालय
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
नकुड़ रोड़, सरसावा 247232, जिला सहारनपुर (उ. प्र.)
फोन : +91 70881 20381
ई-मेल : tartammanjari@gmail.com

शोक सन्देश

उत्तर प्रदेश के पवित्र भूमि, सरयू नदी के किनारे बलिया जिले के ग्राम-सीसोटार में २६ मार्च १६२२ को जन्मे श्री राजन स्वामी जी के पिताश्री डॉक्टर श्यामलाल जी का दिनांक २० जून २०२४ को देर रात्रि के लगभग दो बजे १०३ वर्ष की आयु में धामगमन हो गया है। आप आजीवन निर्धनों के अधिकारों की रक्षा तथा सामाजिक कल्याण के लिये सदैव तत्पर रहे और इसके लिए अपनी आय तक व्यय करने में पीछे नहीं रहे। आपकी प्रमुख समाज सेवायें इस प्रकार हैं -

१. बेघरों को जमीन के विषय में सरकार से आवंटित कराना।

२. गरीब परिवारों के लिए गांव समाज से जमीन प्राप्त कराना।

३. पेशे से डॉक्टर (शल्य चिकित्सक) होने के कारण गरीब, निर्धन व मजदूर लोगों का मुफ्त इलाज करना।

४. गांव में कृषि समिति के लिए जमीन उपलब्ध कराना।

५. शिक्षकों के लिए स्कूल की व्यवस्था कराना।

६. ग्राम पंचायत भवन का निर्माण कराना।

७. अपने गांव में सबसे पहले विद्युतीकरण कराना।

८. बाढ़ से बचाव के लिए बाढ़-रोधी बांध बनवाना।

९. निर्बल और असहायों के लिए आत्म-सम्मान व उनके हक के लिए लड़ाई लड़ना आदि।

आप ब्रह्मवाणी और श्री निजानन्द सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थे। लगभग १०२ वर्ष की आयु में भी आप प्रातः काल शीघ्र उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर प्रतिदिन चितवनि और सेवा पूजा किया करते थे। आपका जीवन हम सभी के लिये प्रेरणादायी है। यह आपके उच्च संस्कारों का ही प्रतिफल है कि आज समाज को श्री स्वामी जी के रूप में एक ऐसा महापुरुष मिला है जो ब्रह्मवाणी के प्रचार-प्रसार और माया के खेल में भटके सुन्दरसाथ की आत्म-जागृति के लिए निरन्तर प्रयासरत हैं। धामधनी से प्रार्थना है कि अपनी निज अंगना को स्व-चरणों के सान्निध्य में रखें।

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ परिवार आपके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

सम्पादकीय

जागनी कार्य रूपी इस लीला के केवल दो पंख हैं- एक ज्ञान और दूसरा प्रेम और इन दोनों पंखों के माध्यम से ही अखंड आनंद की लीला सम्पादित होती है या, दूसरे शब्दों में, अखंड आनंद की प्राप्ति होती है। परन्तु अखंड आनंद का फल देने वाली इस जागनी लीला में सर्वप्रथम तो समाज में ज्ञान और प्रेम के फैलाव के लिए उचित व्यवस्था और समृद्ध वातावारण का निर्माण उसी समाज को करना होगा जिसके कंधों पर इस जागनी लीला का विशेष दायित्व है।

जागनी लीला पुलसरात की राह नहीं है। अगर समस्त ब्रह्मांड में उजाला करने की बात तारतम वाणी हमें कह रही है तो फिर वहाँ प्रश्नचिह्न कैसा? समस्त सर्वजन समाज तक पहुंचना हमारा कर्तव्य है और इसके लिए तारतम वाणी के सैद्धांतिक पक्ष का उचित प्रशिक्षण भी आने वाले प्रचारकों के लिए आवश्यक है। हमें ज्ञान और प्रेम का उजाला करना है तो हमारे धार्मिक स्थान, मंदिर और संस्थाएं सभी ज्ञान और प्रेम के मंदिर होने चाहिए जहां कर्मकांड का नहीं बल्कि ज्ञान और प्रेम की बोलबाला हो तथा उसके प्रशिक्षण को प्राथमिकता दी जाती हो।

अक्षरातीत श्री राज जी की मेहर तले पूज्य श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के संस्थापक श्री राजन स्वामी जी ने यही बीड़ा उठाया है कि हमारे समस्त धार्मिक स्थान ज्ञान और प्रेम के मंदिर बनें जहां तारतम वाणी के प्रशिक्षण को प्राथमिकता दी जाए, समस्त समाज ज्ञान और प्रेम के रस में डूब कर चितवनी के अखंड आनंद में डूब जाए एवं जन-जन तक तारतम वाणी पहुंचे। इसी लक्ष्य को लेकर स्वामी जी चल रहे हैं।

यह प्रसन्नता का विषय है कि ज्ञान और प्रेम का उजाला करने स्वामी जी की अगुवाई में श्री प्राणनाथ कन्या गुरुकुल (बरोड़ा, गुजरात) का निर्माण प्रारंभ हो चुका है। यह कन्या गुरुकुल समस्त समाज का है जो आने वाले समय में ज्ञान और प्रेम की रसधारा फैलाने में नेतृत्व करेगा तथा समाज की महिलाओं को जागनी कार्य के लिए आगे लाने में जमीनी स्तर पर कार्य करेगा।

अतः समस्त समाज का कर्तव्य है कि वे इस पुनीत कार्य में आगे आयें और तन, मन, धन से सहयोग प्रदान कर अपना योगदान देवें।

!! प्रणाम जी !!

शिष्टाचार ही मानव जीवन का आधार है

ब्रह्मलीन आचार्य श्री १०८ धर्मदास जी महाराज

नवतनपुरी

मानव जीवन संस्कारों का पुंज है। संस्कारों के प्रभाव से ही जीवन की ज्योति प्रकट हुआ करती है। संस्कारों से ही जीवन को विकसित और सुगन्धित बनाया जा सकता है। संस्कारहीन जीवन सेमर के फूल के समान प्रदर्शन मात्र है। हमारे संस्कार जितने उच्च और अनुकरणीय होंगे, हम भी उतने ही उच्च कोटि के आदर्श पुरुष बन सकते हैं। तत्त्व ज्ञान की कसौटी आचरण की शिला पर ही निर्भर है। यही कारण है कि वेदों ने, श्रुतियों ने पुनः पुनः घोषणा की है- आचारवान् पुरुषो वेद (श्रुति)।

आचरणशील पुरुष ही ब्रह्म के स्वरूप को समझने में समर्थ हो सकता है। आचरण के बल पर ही आदर्श को ऊँचा उठाया जा सकता है। यह सिद्धान्त अटल सा चला आ रहा है कि जिस किसी ने उस परमत्त्व को ढूंढ़ निकाला है वह आचरणशील अवश्य रहा होगा। बुद्धि बल और स्मरण शक्ति को बढ़ाने में भी आचरण रामबाण का काम करता है अर्थात् अचूक सिद्ध हो चुका है-

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः।
सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।।

छान्दोग्य उपनिषद में इस विषय की चर्चा बड़ी छानबीन के साथ की है। वहां पर आहार को आचार-विचार, संस्कार एवं सबका आधार बतलाया है। आहार का अर्थ केवल भोजन मात्र नहीं होता किन्तु जितनी भी इन्द्रियां हैं, उनके द्वारा जो भी विषय ग्रहण किये जाते हैं, जो भी भावना धारण की जाती हैं वह सब आहार के अन्तर्गत है। उदाहरण के रूप में, उसे इस प्रकार समझना चाहिये-

नेत्रों के द्वारा रूप और रंग के भाव का आहरण होता है, वह नेत्रों का आहार है। जीभ के द्वारा रस का आस्वादन होता है, उसे रसना का आहार कह सकते हैं। इसी प्रकार, जितने भी शुभ या अशुभ कर्म हाथों से किये जाते हैं वे हाथ का कर्मरूप आहार है।

इस प्रकार, जो भी भाव या कर्म इन्द्रियों द्वारा किये जाते हैं वे सब आहार में आते हैं। इस प्रकार से देखा जाये तो हमारे सभी कर्म, सभी आचरण आहार में गिने जा सकते हैं। अब आहार की शुद्धि किस प्रकार मानी जाय ?

तो कहना पड़ेगा कि बाहर से जो कुछ भी हमारे अन्दर आये, वह सब आहार में ही आते हैं। जब उसकी मन, वचन और कर्म से शुद्धि प्राप्त की जा सके तो उसे कहते हैं आहार शुद्धि।

जब सब इन्द्रियों के आहार विशुद्ध हो जायेंगे, तब सत्त्व की शुद्धि प्राप्त होगी एवं जब सत्त्व की शुद्धि प्राप्त हो जायेगी तब हमारे हृदय में विशुद्ध भावना का उदय होगा, जो कभी हट नहीं सकता। जब भाव अटल हो जावेगा, तब सभी बातें सुगम हो सकती हैं।

कुछ सज्जन शिष्टाचार अथवा आचार का अर्थ केवल नहाने-धोने को एवं खान-पान में विचार लेकर चलने वालों को ही शिष्ट समझते हैं परन्तु वास्तविक तत्त्व इससे भिन्न है। मनुष्य जीवन की प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक कर्म, प्रत्येक हित शिष्टाचार के अनुरूप ही उन्नति के पथ पर बढ़ा करता है।

जो लोग खाने-पीने में भेदभाव को नहीं मानते, वे भी आचारण को महत्व देते हैं। सदाचार किसी देश या जाति की पैत्तृक सम्पत्ति नहीं है और न किसी धर्म या सम्प्रदाय के दायित्व की वस्तु है किन्तु सर्वदेशीय, सार्वत्रिक और व्यापक है। जो समाज, देश या सम्प्रदाय इसका पालन करता है वही उसके लाभ को प्राप्त कर सकता है। सदाचार, त्याग, तप, संयम, नियम, अहिंसा सत्य शौच शुद्ध भावना और स्थायी निश्चय ये सभी शिष्टाचार के अन्तर्गत विद्यमान हैं। लेना-देना, खाना- पीना, उठना-बैठना सबमें आचार ओतप्रोत है। मन में, वचन में और कर्म में आचार की छाया ही काम करती है। मानसिक कल्पना का स्वरूप हमारे आचार के ऊपर ही अवलम्बित है। स्थूल, सूक्ष्म दोनों जगत में आचार का ही प्रतिबिम्ब पडता है। जैसा बिम्ब होगा प्रतिबिम्ब भी उसी के अनुरूप होगा। आचार-विचार मनुष्य को सत्य, सद्विचार एवं सत्कर्म करने की प्रेरणा करता है। जो इन तीनों से विमुख है वह चाहे दिन भर स्नान ध्यान में ही क्यों न निमग्न बना रहे, वह सफल नहीं हो सकता। जो सदाचारहीन है, वह कदापि आदर्श महापुरुष नहीं बन सकता। जो व्यवहार मनुष्य जीवन में धैर्य, क्षमा, दम अस्तेय (मन से, वचन से और कर्म से किसी का अपहरण न करना), पवित्रता का पालन करना, इन्द्रियों के ऊपर निग्रह रखना, सत्य का अवलम्बन, हिंसा से दूर रहना, उदार भावना का उदय, शिक्षा का विकास करना सिखाता है इत्यादि सब बातों को जीव नमें उतारने का नाम ही सदाचार है।

यों तो विविध रूप में आचरण को विद्यमान पाते हैं। फिर भी मुख्यतया लौकिक-अलौकिक के भेद से दो प्रकार का होता है। इस लोक में सुख शान्ति देने के अतिरिक्त परलोक में भी सुख का सृजन करना आचरण का मुख्य ध्येय है। लौकिक आचरण में जो वस्तु अंशरूप से क्षणिक पाई जाती है, अलौकिक आचरण में वही अनन्त सुख को प्रदान करते हुए स्थायी सुख-शान्ति का विकास करती है।

अलौकिक शिष्टाचार कहता है कि प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाना चाहिये। नित्य क्रिया से निवृत्ति होकर शुभ विचारों के द्वारा आत्मा के कल्याण के मार्ग का चिन्तन करना चाहिये। जगत के विवेकहीन मनुष्यों को सद्बुद्धि प्रदान कर उन्हें जगा देना चाहिये। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जाग्रत ज्ञान देकर आत्म-कल्याण के पथ का पथिक बनाना चाहिये। जो दीन-हीन दशा में पड़े हैं, जिन्हें अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान नहीं है, जो मनुष्य होकर भी पशुवत जीवन व्यतीत करते हैं, उन सबको सन्मार्ग बताकर स्थायी शान्ति का पाठ पढ़ाना चाहिये।

जो मत-मतान्तरों के अज्ञान में फँसे हैं, जो नाना मतवादियों के मत में पड़ कर मत वाले बने पड़ें है, उन्हें भी सनातन भूमिका की ओर जाने का संकेत देना चाहिये एवं जो जीवात्मा अपने मूल धाम को भूलकर इधर-उधर

चक्कर में पड़े हैं, उन्हें भी विवेक द्वारा समझा कर अपने अखंड घर का मार्ग बताना यह भी अलौकिक आचरण वाले से ही बन सकता है। अलौकिक मार्ग को प्रशस्त और सुगम बनाने में जितना भी तप, त्याग या परिश्रम करने पड़े। उससे पीछे न हटना यह भी अलौकिक आचरणशील पुरुषों का ही कर्तव्य है।

जिससे अलौकिक वस्तु प्राप्त हो, उसे अलौकिक और जिससे लौकिक अभ्युदय प्राप्त हो उसे लौकिक सदाचार कहते हैं। मन्दिर में जाकर पूजा-पाठ करना, चरणामृत-प्रसाद लेना, सत्संग ज्ञान, कथा वार्ता श्रवण करना, सदुपदेश ग्रहण करना, चन्दन, तिलक मालादि से विश्वास में वृद्धि करना - ये सब अलौकिक आचरण में ही गिना जाता है।

जो कुछ कर्तव्य कर्म करना, उससे फल की अभिलाषा न रखना या फिर अपने कर्मों को प्रभु के अर्पण करते जाना, यह भी परम उत्तम आचरण है। परन्तु इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि अशुभ कर्म करते हुए अर्पण की भावना न रखनी चाहिये। जिस प्रकार किसी महापुरुष को अयोग्य पदार्थ देना योग्य नहीं, उसी प्रकार प्रभु के निमित्त पाप कर्म अथवा निषिद्ध आचरण को कभी अर्पण करने की चेष्टा न करे, ऐसा करने से मनुष्य की भावना अशुद्ध हो जाती है।

इस प्रकार से अलौकिक आचरण के भी विविध भेद हो सकते हैं। सदुपदेश देते हुये जाग्रत करने की सेवा करना यह सबसे उत्तम अलौकिक सदाचार है। लौकिक आचरण में अपने से बड़ों को प्रणाम करना, माता-पिता, गुरु आदि में पूज्य बुद्धि रखना, हिंसा कर्म तथा दुराचार का परित्याग करना, सात्विक भोजन से जीवन व्यतीत करना, पवित्र कर्म, पवित्र भावना, उदार-चरित्र होना तथा प्रत्येक समय विचारपूर्वक कर्म करना - ये सब लौकिक आचरण के अन्तर्गत माने जा सकते हैं।

चेतन सेवा भी लौकिक आचरण के अन्तर्हित है। जीव मात्र के प्रति उपकार भावना रखना, धार्मिक जीवन व्यतीत करना - ये भी सब आचार के अन्दर ही माने गये हैं। विशुद्ध भोजन, विशुद्ध चरित्र, आदर्श व्यवहार ये भी आचरण की कसोटी है। बिना कसौटी के परीक्षा सही नहीं होती। उसी प्रकार आचरण को कसौटी पर कसने के लिये उक्त बातें कही गई हैं।

इस प्रकार आचरण को शिष्ट पुरुषों ने विविध रूप में गाया है। शिष्टों के द्वारा अपनाने के कारण ही उसे शिष्टाचार कहा जाता है। शिष्टाचार मनुष्य के लिये सबसे उच्च शिक्षण है। शिष्टाचार के साथ ही आस्तिक भावना का उदय होता है। जहां पर शिष्टाचार की कमी होगी, वहां आस्तिक भावना विशुद्ध रूप नहीं टिक सकती। यही कारण है कि शास्त्रों में इसे बड़ा महत्त्व दिया है-

आचाराल्लभते लक्ष्मीः आचारात्प्राप्यते यशः।
आचाराद्दीर्घायुश्च आचाराद् ज्ञानमुत्तमम्।।

आचार से लक्ष्मी बढ़ती है, आचार से ही यश प्राप्त होता है, आचार का पालन करने से मनुष्य दीर्घायु हो जाता है एवं आचार के प्रताप से ही उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार देखा जाय तो आचार मनुष्य जीवन को सफल बनाने की चाबी है। धन बल, आयु बल, यश का विस्तार और उत्तम ज्ञान के विकास के लिये भी हमें आचार का सेवन करना चाहिये।

व्यवहार और व्यवसाय भी आचार के आधीन हैं। प्रत्येक अवस्था में आचरण हमें सफलता प्रदान करता है। स्त्री जाति का सबसे उत्तम आचरण पतिव्रता धर्म का पालन करना है। पतिव्रता स्त्री सबसे उत्तम कोटि की मानी गई है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना मनुष्य का सबसे उत्तम आचरण है।

सन्त-महात्मा तथा महापुरुषों के लिये भी ब्रह्मचर्य उत्तम आचरण है। ब्रह्मचर्य के साथ सदाचार का पालन करना विद्वानों तथा वीर योद्धाओं का तो आभूषण ही है। क्षत्रियों के लिये तथा वैश्यों के लिये नीति-पूर्वक द्रव्य को एकत्रित करने का नाम भी सदाचार है-

द्रव्ये शुचिः स शुचिर्नरः।

धर्मशास्त्र का तो अटल विश्वास है कि जिसकी कमाई विशुद्ध है, जिसका धन पवित्र है, छल-कपट से नहीं कमाया गया- वही मनुष्य आचरणशील हो सकता है। विश्व का चौदह आना समाज कमाई के ऊपर निर्भर है। दो आना समाज स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता होगा। मनुष्य अन्य विषयों में उत्तम आचरण का पालन भी करता है परन्तु उसकी कमाई उत्तम नहीं है तो उसे आचरणहीन मानना होगा।

इसी प्रकार, अन्य विषयों में भी आचरण को महत्त्व दिया है। जो अनन्य भक्त हैं, प्रेमलक्षणा भक्ति के उपासक हैं, उनके लिये अनन्य-निष्ठा रखना यह भी आचरण में निहित है। अन्य देवों की उपासना करना यह भी एक प्रकार से व्यभिचार माना गया है। जो आचरण किसी प्रकार के ज्ञान को अथवा धारणा को धक्का नहीं पहुँचाता, उसे ही सदाचार माना गया है।

शिक्षा का अभ्युदय और विकास भी आचरण के ऊपर निर्भर है। जो शिक्षा हमें आवागमन के बन्धन से न छुटा सके, जो शिक्षा हमें सन्मार्ग न बता सके, उसे शिक्षा कहना सुसंगत नहीं। यही कारण है कि मनु ने शिक्षा ग्रहण के साथ दीक्षा को भी अनिवार्य बतलाया है-

एतांश्चान्यांश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चैपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतिः।।(मनु. अ. ६-२९)

वन में निवास करते हुए द्विजों को चाहिये कि उपनिषद के द्वारा जानने योग्य आत्मा को सिद्धि प्रदान करने वाली विविध दीक्षाओं को भी धारण करे। ये दीक्षा क्या हैं? ये वही दीक्षा हैं, जिनके धारण करने से आस्तिक भाव बढ़ता रहता है। आचरण में दिव्य ज्योति का बढ़ता हुआ प्रकाश मनुष्य को एक उच्च कोटि का आदर्श पुरुष बना देता है।

इसलिये सभी शिक्षा आचरण के ऊपर निर्भर हैं। यह सिद्धान्त मौलिक माना जाता है। शिक्षा का विकास, शिक्षा का विजय सदाचरण के ऊपर अवलम्बित है। जो शिक्षा के साथ आचरण को महत्व नहीं देते, वे शिक्षा के सब अंगों को नहीं समझते। इसलिये, हमारे यहां पूर्व महापुरुषों ने जो भी नियम शिक्षा पत्री अथवा उपदेश द्वारा हमें बताया है वह हमारे हित के लिये है। उसका कभी परित्याग न करना चाहिये। बल्कि जितना भी बने उसका पालन करना चाहिये। यही शिक्षा का निचोड़ है।

धनी के नयन ही धनी के दिल का दरवाजा

अनिल श्रीवास्तव

चंडीगढ़

धनी के लाडले सुंदरसाथ जी, चलिए हम सब मिल कर सबसे पहले अपने वतन की शोभा को निहारे जिसे धनी बड़े प्यार से हमारे दिल में बसाते है, जिसका सबसे प्यारा माध्यम धनी ने हमें यही बताया है कि ऐ मेरी प्यारी रूहों! तुम मेरे नयनों में देखो तो तुम्हें सबकुछ मिलेगा।

अक्सर चितवन में हम धनी की संपूर्ण शोभा को निहारते हैं, कभी धनी के चरण तो कभी चरणों की अंगुलियाँ लॉक तली एड़ी घूँटी फ़ना यानी तली के ऊपर वाला हिस्सा जिसे पोहोंचा भी कहते हैं उसे निहारते हैं तब धनी बड़े प्यार से हमें कहते हैं कि मेरे मुखारविंद को तो देखो जिससे तुम्हारे लिए अत्यंत लाड टपक रहा है, मेरे नैनों को तो देखो जिसमें तुम्हारे लिये अत्यंत लाड भरा है क्या यह सब तुम्हें नज़र नहीं आ रहा।

नयनों के पूर्ण स्वरूप को निहारो पलकें जो नयन के असल भाग को ढाँप लेती है जो श्वेत रंग का है, नूर सागर का रंग भी सफ़ेद है । मेहर सागर में तो सफ़ेद लाल पीला हरा नीला श्याम सब रंग हैं यानी दस रंग हैं जिनमें अनंत रंग भी है जिनकी शोभा को हम ना तो बयान कर सकते हैं और ना ही उनके बारे में सोच पाते हैं। हम तो केवल एक काम कर सकते हैं कि धनी की कृपा से धनी के नयनों से अपने नयन मिला सकते हैं-

पिउ नेत्रों नेत्र मिलाइए, ज्यों उपजे आनन्द अति घन।
तो प्रेम रसायन पीजिए, जो आतम थें उतपन।।(सागर, ११//४०)

रसायन हिन्दी भाषा के दो शब्दों का मिलान है - रस और अयन। अयन, अर्थात् घर और रस, यानी धनी के दिल का रस। रसायन धनी का दिल है जहां अत्यंत रस के भंडार भरे हुए हैं। रूहें अपने अंदर जो इश्क़ का सागर भरती हैं वही हम रूहों का ख़ानपान है और वही रसायन है। इस रसायन के रस का भंडार धनी का दिल है जिसमें नूर, नीर, दधि, क्षीर, घृत मधु, रस और सर्वरस सभी सागर बसते हैं, उसी को पूर्ण सत्य कहा जाता है मार्फत कहा जाता है। जो भी सुंदरसाथ धनी के नयनों के माध्यम से धनी के दिल में प्रवेश कर जाते हैं धनी उनको अपने दिल से एक क्षण के लिये भी अलग नहीं करते। हमें कहीं भी भटकने की आवश्यकता नहीं है बस धनी के दोनों चरण-कमल अपने हस्त-कमलों में पकड़ धनी के नैनों से नयन मिला लें।

धनी और रूहों के मध्य दो दरवाज़े हैं- एक धनी के दिल का दरवाज़ा उनके नयन और एक रूहों के दिल का दरवाज़ा रूहों के नयन। जब यह दोनों दरवाज़े खुल जाते हैं तो धनी के दिल का अनंत रस उनके नयनों से झरते हुए आत्माओं के नैनों से होते हुए उनके दिल में प्रवेश कर जाता है और यहीं पर धनी के अंग-अंग का रस है।

इस बात को हम सब जानते है कि धनी के दिल को ही श्यामा जी का स्वरूप कहते हैं क्योंकि वही धनी के आनंद अंग है। धनी के दिल में विराजमान अखंड नियामतों का जो रस है वह उनके नयनों से होते हुए परात्म के नयनों से होते हुए उसके दिल से होते आत्मा के नयनों से होते हुए आत्म के दिल में समा जाता है। यह तो सब दरवाज़ों का खेल है, धनी के दिल का दरवाज़ा परात्म और आत्मा के दिल का दरवाज़ा, हमें चाहिए कि हम धनी की मेहर से अपने दिल के सभी दरवाज़े खोल दें और धनी ने तो अपने दिल का दरवाज़ा खोल ही रखा है।

धनी के दिल के अनंत आनंदमय रस परात्म के दिल से होते हुए आत्म के दिल में पहुँच जाते है तो प्रेम रसायन पीजिये। जब नैनों से नयन जुड़ जाते हैं तो धनी के दिल के अंदर जो प्रेम के अनंत रस विराजमान हैं उनका रस पीने को मिलता है।

परात्म के नयन की पुतली ही आत्मा का स्वरूप है तो इस प्रकार आत्मा के दिल में हर रस पहुँच जाता है और श्यामा जी भी आहिस्ता-आहिस्ता आत्मा के नैनों से होते हुए आत्मा के दिल में समा जाती हैं। न तो धनी हमें छोड़ते हैं और न ही श्यामा जी हमें छोड़ते हैं बल्कि छोड़ने वाले तो केवल हम ही हैं। इतना लाड मिलने के बाद यानी जब धनी अपने दिल को उठा कर हमारे दिल में ही रख देते हैं तो भी हम यही कहते रहते हैं कि धनी अपने दिल का रस हमें पिलाओ। धनी तो पिला ही रहे हैं लेकिन हम क्या कर रहे हैं अब हमें यह देखना है-

आतम अन्तस्करन विचारिए, अपने अनुभव का जो सुख।
बढ़त बढ़त प्रेम आवहीं, परआतम सनमुख।।(सागर, ११/४१)

हमें अपने अंतःकरण यानी दिल में विचारना है कि धाम में किस प्रकार से परात्म धनी के नैनों से नयन मिला कर धनी के दिल का रस पीती है। यह बात हमें समझनी होगी कि हम आत्माएँ भी परात्म के ही प्रतिबिंब स्वरूप हैं तो उनके दिल में और हमारे दिल में कोई अंतर नहीं है। जैसा राज़ जी का दिल वैसा परात्म का और वैसा ही आत्म का दिल है।

धनी अपने इल्म के सागर में हमें बता रहें हैं कि धाम में वह हम सब को कैसा लाड पिलाते हैं उसे याद करो। धनी फ़रमाते हैं कि मुझे पता है कि तुम सब कुछ भूल चुकी हो लेकिन जब मैं तो तुम्हें सब याद करवा रहा हूँ तो तुम कम से कम याद तो करो।

जैसे धनी के दिल का प्रेम हमारे दिल में आने लगता है तो हमारी नज़र हमारे मूल स्वरूप हमारी परात्म पर पड़ती है और सब दरवाज़े दिखने लगते हैं, कैसे धनी ने अपने दिल के दरवाज़े यानी नैनों को खोला और उससे प्रेम की बारिश परात्म के नयनों में डालनी शुरू की और कैसे उनके नयनों से उनके दिल में पहुँची और वहाँ से कैसे आत्म के दिल में पहुँची। जो परमधाम में हमारे लाड के सुखों के अनुभव थे उन्हें विचारो तो आत्मा अपने मूल स्वरूप के सम्मुख खड़ी हो जाती। मूल मिलावे में देखो युगल स्वरूप सिंहासन पर बैठे हैं दोनों एक दूसरे से नयन मिला कर बैठे हैं, राज जी का दिल ही श्यामा जी का स्वरूप है और सभी परात्म श्यामा जी के अंग हैं। देखो कैसे राज़ जी का दिल

उनके नयनों से होते हुए श्यामा जी के नयनों से होते हुए परात्म के नैनों से होते हुए परातम के दिल तक पहुँचा और वहाँ से आत्म के नैनों से होते हुए उनके दिल में पहुँच जाता है। यह कोई कठिन बात नहीं है केवल राज़ जी के लाड भरे वचन सुनो और अपने दिल में रख लो।

इतथें नजर न फेरिए, पलक न दीजे नैन।
नीके सरूप जो निरखिए, ज्यों आतम होए सुख चैन।।(सागर, ११/४२)

धनी यहाँ अपने नयनों की नज़र से धनी के नैनों को देखने का आदेश दे रहे हैं और फ़रमाते हैं कि अपनी नज़र को हटाना नहीं है। अपनी पलकों को भी अपने नयनों के सामने आने मत दीजिये।

धनी के मुखारविंद को देख उनके नैनों को देख निलाट को भौंहों को उनकी पलकों उनकी बरौनियों को उनके सुंदर गौर उज्ज्वल गहरी लालक लिये हुए मुख चौक अधरों नासिका श्रवण अंग हरवटी लॉक गालों को देखते हुए हमारी नज़रें उनकी नज़रों से मिलान कर लेती हैं।

अपने नयनों के आगे अपनी पलकों को मत आने दो। तुम्हारे जो सफ़ेद रंग के नैन हैं वह प्रेम का रस लेकर गुलाबी हो जाते हैं जो युवा अवस्था का मदमाता मदहोशी वाला रंग है, उसके अंदर तारा, तारे के अंदर जो पुतली है उसका सीधा सम्बन्ध धनी के दिल से है। ऐसे ही परातम के नयन से जुड़े उनके दिल, आत्मा के नयन से जुड़े हुए उनके दिल हैं। श्यामा जी तो विराजमान हैं ही और हम सब उनके नूर अंग हैं । यह मत सोचो कि कोई चर्चा सुना रहा है या कोई सुन रहा है बस अपने श्रवण अंग को धनी की रसना से मिला लें, अपनी आत्म के दिल के नैनों को धनी के दिल के नैनों से मिला लो-

तब प्रेम जो उपजे, रस परआतम पोहोंचाए।
तब नैन की सैन कछू होवहीं, अन्तर आंखां खुल जाए।।(सागर, ११/४३)

जब चितवन में हम ऐसा विचार करते हैं,नयना से नयन मिलाते हैं दिल से दिल मिलाते हैं और जो इल्म सागर धनी की रसना से टपक रहा है उससे अपने श्रवण अंगों को जोड़ लेना है तब जो प्रेम उपजता है तो उसका रस परातम को रस पहुँचता है। यह वाणी ना तो कोई सुना सकता है ना ही पढ़ सकता है क्योंकि यह राज़ जी की वाणी है और उनकी रसना से कही और पढ़ी जाती है।

सैन अर्थात् इशारे जैसे आशिक़ और माशूक़ के नयन मिलते हैं तो उनके इशारे कोई और नहीं देख सकता केवल वह दोनों ही अपने दिल की नज़र से देख पाते हैं। नज़र मार्फ़त है और तन के नयन हक़ीक़त है जो दिल का दरवाज़ा है यानी हक़ीक़त मार्फ़त का दरवाज़ा हैं-

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।
तब आतम परआतम के, रहे न कछू अन्तराए।।(सागर, ११/४४)

किसी भूल भुलवनी में नहीं खोना है, आत्मा भी है परात्म भी है। परात्म धाम में बैठी है और उसकी नज़र धनी का हुक्म लेकर जिस मानव तन पर बैठती है वह आत्मा कहलाता है, इस प्रकार से आत्मा का दिल परात्म के दिल से जुड़ जाता है तो आत्मा और परात्म में कोई अंतर नहीं रहता है-

परआतम के अन्तस्करन, पेहेले उपजत है जे।
पीछे इन आतम के, आवत है सुख ए।।(सागर,११/४५)

धनी अपने दिल के सारे रस को अपने नैनों से हमारे मूल तन परात्म को पहुँचाते है और उनके दिल में जो भी बात उपजाते हैं वह पहले धनी के दिल में उपजती है ।इस प्रकार से आत्मा को वह सुख मिल जाता है-

ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।
सुरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल।।(सागर, ११/४६)

मूल मिलावे में चौंसठ थम्बों के बीच में रूहें बैठी हैं जिनके मध्य में सिंहासन पर युगल स्वरूप विराजते हैं ,बीच मध्य को कहते हैं और किसी भी चीज के मध्य को उसका दिल कहते हैं। हक़ीक़त का मध्य मार्फ़त होता है। अपने दिल में धनी का वो स्वरूप देखो जिसे परात्म ने अपने हाथों में चरणों को पकड़ कर उनके नयनों से नयन मिलाकर अपने दिल में बसा रखा है क्योंकि हम आत्माएँ भी उसी परातम के प्रतिबिंबित स्वरूप हैं। हमें खुद को यहाँ नहीं देखना है बल्कि धाम में बैठे हुए देखना है और अपनी आत्मा को परात्म से मिला के रखना है। धनी के मुखारविंद और रसना को अपने दिल में रखना है-

सोभा मुखारबिन्द की, क्यों कर कहूं तेज जोत।
रस भरयो रसीलो दुलहा, जामें नित नई कला उद्दोत।।(सागर, ११/)

उनके मुखारविंद पर जब हमारी नज़रें ठहर जाती है तो हमारे नयन उनके नयनों से अरस परस हो जाते हैं और धनी के मुखारविंद की शोभा आभा कांति चमक नूर तेजस्विता ज्योति दिल में समाने लगती है। दूल्हा के मुख चौक पर अपने नयन केंद्रित करें तो हम देखेंगे कि धनी के दिल का रस धनी के नयनों से झरते हुए हमें मिलने लगता है। यह बहुत ही प्यार भरी बात है। परमधाम में नया पुराना घटना बढ़ना कुछ नहीं होता बल्कि वह शोभा हमारे दिल में ऐसे चढ़ कर आती है कि लगता है बढ़ती जा रही है। जैसे जैसे हमारे दिल में यह सब समाता जाता है तो ऐसे लगता है जैसे उसकी शोभा बढ़ती ही जा रही है। धनी की शोभा तो अनंत है लेकिन जैसे जैसे हमारे दिल में चुभता जाता है वैसे वैसे लगता है बढ़ता ही जा रहा है-

कमी जो कछुए होवहीं, तो कहिए कला अधिकाए।
ए तो बढ़े तरंग रंग रस के, यों प्रेमे देत देखाए।।(सागर, ११/४७)

यदि धाम में या धनी के मुख की कांति शोभा में कोई कमी हो तो कह सकते हैं कि रस बढ़ गया लेकिन कमी तो है ही नहीं। जब हमारे दिल में यह प्रेम बढ़ने लगता है तो हमें यह बात समझ आती है। सिंगार प्रकरण १४ में वही सारी बातें धनी ने दोहराई हैं जो सागर ग्रंथ के प्रकरण ११ में लिखी हैं-

अति गौर पांपण नैन की, पल वालत देखत सरम।
गुन गरभित मेहेरें पाइए, रूह हुकमें देखे ए मरम।।(सिंगार १४/३७)

धनी की जो पलकें हैं वो अति गौर रंग की है ,जो गौर रंग लालिमा लिए होता है उसमें जब नूर का सफ़ेद रंग मिश्रित होता है गुलाबी रंग की अद्भुत आभा देता है उसमें ऐसी कांतिमय चमक होती है जिसका बयान नहीं किया जा

सकता। पलकें झुकी, शरमाईं, खुली और फिर अपने माशूक़ को देखकर झुकी, आशिक़ और माशूक़ दोनों का यही हाल होता है। राज़ जी आशिक़ और रूहें माशूक़ यह रिश्ता अरस-परस होता है यानी दोनों ही एक दूसरे के आशिक़ और माशूक़ होते हैं। जब आशिक़ माशूक़ को देखते हैं तो प्रेममय लज्जा का अनंत सुखदायी सरूप खड़ा हो जाता है जो अनंत आनंद प्रदान करने वाला होता है।

धनी के नैनों के अंदर के गुण श्वेत रंग के हैं जो गुलाबी डोरे लिये हुए हैं। लाल प्रेम का रंग है सफ़ेद धनी के दिल नूर का रंग है जब यह मिलते हैं तो उस मिश्रण का रंग कंसुबा के फूल जैसा हो जाता है जो बहुत ही अद्भुत गुलाबी है और यह धनी के नयनों में प्रेम के डोरे हैं। उसमें जो श्याम रंग का तारा दिखता है वो श्याम रंग का इल्म सागर है। उस तारे के अंदर एक पुतली है जो देखती है। जब इल्म रूपी तारा को चीरती हुई पुतली देख पाती है तो इल्म से धनी उसके दिल को ऐसा रोशन कर देते हैं कि उसे सब कुछ दिखाई देने लगता है। धनी के दिल का लाड़ जब प्रकट होता है तो मेहर कहलाता है। इस मेहर से धनी के दिल में विराजमान अनंत गुण जैसे प्रेम आनंद सौंदर्य एकत्व आभा कांति चमक छटा तेजस्विता उमंग उत्साह उल्लास ऊर्जा प्रफुल्लता माधुर्यता संगीत नृत्य कृपा करुणा आदि लिए हुए धनी के दिल से धनी के नयनों की पुतली से होते हुए तारा रूपी इल्म सागर में तैरते हुए उनके सफ़ेद प्रेममय नयन जो गुलाबी हैं कंसुबा के फूल जैसे हैं उनमें पहुँच जाते हैं और धनी के दिल का अनंत लाड उनके नयनों से टपकता है। धनी इसका भेद अपने हुक्म से रूहों के दिल में पहुँचाते हैं-

स्याम बंके भौंह नैनों पर, रंग गौर जुड़े दोऊ आए।
निपट तीखी अनियां नेत्र की, मारे आसिकों बान फिराए।।(सिंगार १४/३८)

धनी ने अपने तिरछे प्रेममय किशोर नयनों के तारों के काले रंग को नयनों से बाहर करके भौंहों पर प्रकट किया। धनी के मुख चौक पर नासिका से निलवट की ओर जाते हैं वह नयना किशोर बांके तिरछे हैं। धनी के गौर मुखारविंद पर यह यह भौंहें जुड़ कर आती हैं। धनी के नेत्र भी तिरछे नुकीले अनियारे हैं। उन नयनों से धनी बाण चलाते हैं । बाण के दो नुकीले भाग हैं, एक धँसने वाला और एक अटकाने वाला, जैसे एक त्रिभुज होता है। अब धाम की तरफ़ देखो नूर सागर आग्नेय कोण में एक कोना और निसबत सागर ईशान कोण में दूसरा कोना सीधा सौंदर्य के सागर में जाता है जो भाला है यानी धनी के मुखारविंद की, श्यामा जी के मुखारविंद, धाम के हर सागर की शोभा है जाकर चौथे सागर दधि सागर का स्वरूप होता है। निसबत होने से धनी के नयनों से नयन मिला कर उनके नूर के रस का पान करते हुए उनके सौंदर्य के सागर में आत्मा डूब जाती है। यह सब इसीलिए हो रहा है क्योंकि निसबत है और अगर निसबत ही नहीं तो कुछ भी नहीं है।

जो धाम की निसबतियाँ हैं धनी की अंगनाएँ हैं वो एक छोर पर, धनी का दिल दूसरे छोर पर और जब दोनों का मिलान होता है तो सीधा सौंदर्य के सागर में धँस जाता है-

जब खैंचत नैना जोड़ के, तब दोऊ बान छाती छेदत।
अंग आसिक के फूट के, वार पार निकसत।।(सिंगार १४/३९)

धनी अपने दोनों नेत्रों से बाण चलाते हैं और रूहों के दिल को छेद जाते हैं। यानी की धाम का सौंदर्य युगल-स्वरूप का सौंदर्य दधि सागर जो चौथा सागर है जब उसकी आभा सीधी रूहों के दिल में पहुँचती है तो वो सीधा वहीं धंस जाती है उसे कोई निकाल नहीं पाता। रूहों की छाती को नुकीला बाण ऐसे छेदता है मानो उसकी छाती को छेद कर

निकल कर जाता है। एक बार धनी फ़रमाते है यह बाण छाती छेद कर निकल जाते हैं और फिर कहते हैं बाण वहीं अटक जाता है। दोनों में अंतर देखो।

राज़ जी के दोनों नयन कमल से जो बाण निकलते हैं उसका स्वरूप यही है कि अग्र भाग सौंदर्य का भाग छाती को छेदता है और इतने वेग से छेदता है कि वो नुकीलें होने के बावजूद परातम के दिल से बाहर होकर आत्म की छाती को छेदता है। जब आत्मा की छाती को छेदता है तो वही धंसा रह जाता है। परात्म की छाती को छेद कर निकलता तो है लेकिन उसी के प्रतिबिंबित सरूप के दिल में जाकर धंस जाता है। तो धनी के नयनों के बाण परात्म के दिल को छेदते हुए आत्मा के दिल में अटक के रह जाते हैं-

दमानक ज्यों कहूं कहूं, यों पीछली देत गिराए।
ए चोट आसिक जानहीं, जो होए अर्स अरवाए।।(सिंगार १४/४०)

जैसे बंदूक़ के अंदर गोलियाँ होती है जैसे ही उसे किसी पर चलाते हैं तो वह आदमी गिर जाता है वैसे ही आत्म भी धनी के सरूप पर फ़ना हो जाती है। जिसकी निसबत धनी से है वही रूहें धनी की आशिक़ होती है जब धनी के नयन रूपी बाण से उसको चोट लगती है वही इसे समझ सकती है-

भौंह बंके नैन कमान ज्यों, भाल बंकी सामी तीन बल।
बान टेढ़े मारत खैंच मरोर के, छाती छेद न गया निकल।।(सिंगार १४/४१)

धनी की दोनों भौंहें धनुष के समान हो जाती है और भृकुटी दोनों भौंहों के बीच का स्थान जहां से बाण चलता है, जो प्रत्यंचा यानी डोर है वो मुख चौक है। इस प्रकार से राज़ जी ने भौंहों पर जो प्रेम का बाण चढ़ाया है वो धनी के दिल के अनंत रस में भीगा रहता हैं। यह रस अमृत है जब इसमें भिगोकर बाण को खींचा तो वह बाण परातम के दिल से निकलता हुआ आत्म के दिल में अटक जाता है वहाँ से निकल नहीं पाता-

तीर कह्या तीन अंकुड़ा, छाती छेद न गया चल।
रह्या सीने बीच आसिक के, हुआ काढ़ना रूहों मुस्किल।।(सिंगार १४/४२)

परात्म का दिल उसका अक्स आत्मा का दिल है राज़ जी मूल हैं जहां से बाण आकार परातम के दिल से होते हुए आत्मा के दिल में धंस जाता है। अब वह बाण रूहों के दिल के अंदर समा जाता है।

जब धनी के सौंदर्य के स्वरूप उनके नूर का स्वरूप रूहों के दिल में उनके इल्म से पहुँच जाता है तो फिर वह रूह वहाँ से निकल नहीं पाती चाहे लाख यत्न कर लो। धनी ने अपने इल्म से ऐसा अद्भुत रस पिलाया है वह सब अमृत से भिगो कर रूहों के दिल में डाल देते हैं-

केहेर कह्या तीर त्रगुड़ा, रही सीने बीच भाल।
रोई रात दिन आसिक, रोवते ही बदल्या हाल।।(सिंगार १४/४३)

यह तीन आँकड़ों वाला तीर मानो कहर बरसाता है। कहर वैसा तो बुरा शब्द है लेकिन यहाँ कहर अर्थात् धनी अपने दिल के अनंत सागर का रस उस बाण के द्वारा आत्मा के दिल के अंदर पहुँचा देते हैं तो आत्मा का हाल भी परातम जैसा हो जाता है। जब रूह इल्म के द्वारा इश्क़ के रस का पान करने लगती है तो उसके नयनों से आंसुओं के

रूप में उसके मुखारविंद पर धनी के दिल का रस बहता है। आंसू वैसा तो खारा होता है लेकिन जब धनी के नयनों से झरता हुआ अमृत रस है आत्म के दिल में पहुँचता है तो उसका हाल रोने वाला हो जाता है और आत्मा परात्म अरस-परस हो जाती है-

अर्स बका तीर त्रगुडा, रह्या अर्स रूहों हिरदे साल।
ना पांच तत्व तीर त्रिगुन, ए नैन बान नूरजमाल।।(सिंगार १४/४४)

राज जी के नैनों का कमाल है जो वह अपने दिल के अनंत रस में भिगो कर बाणों को अपने तीर कमान से छोड़ ही देते हैं-

ए बलवान सेहेज के, जो कदी मारें दिल में ले।
न जानों तिन आसिक का, कौन हाल होवे ए।।(सिंगार १४/४५)

हम सब अपने दिल में विचारे कि क्या वो तीर चला और सीधा हमारे दिल के अंदर धंस गया कि नहीं। क्या उस तीर के अंदर भरा रस हमारे नयनों से आकर हमारे गालों को रंग रहा है। क्या हमारे गालों को भी प्रेम के आंसू झरते हुए लालिमा प्रदान कर रहे हैं ।यह हमें देखना है की क्या हमारे मुख चौक को लालिमा प्रदान कर रहे हैं या नहीं-

ए बान टेढ़े अव्वल के, और टेढ़े लिए चढ़ाए।
खैंच टेढ़े मारें मरोर के, सो क्यों न आसिक टेढ़ाए।।(सिंगार १४/४६)

यह धनी के दिल का स्वरूप मार्फ़त शाश्वत का सरूप है उसे धनी ने इस प्रकार से धनुष पर चढ़ाया है कि परातम के दिल को छेदते हूए आत्मा के दिल में धंस जाये और आत्मा निहाल हो जाये। अब आत्मा अपने धनी पर क्यों ना कुर्बान हो-

कहें गुन महामत मोमिनों, नैना रस भरे मासूक के।
अपार गुन गिनती मिने, क्यों कर आवें ए।।(सिंगार १४/४७)

राज़ जी महामति जी द्वारा अपनी रूहों को याद दिला रहे हैं कि माशूक़ के नयन अमृत रस से भरे हुए हैं और उनमें से धनी के दिल के अनंत रंग रस झरते हैं। ऐसे नयनों के द्वारा जो उनके दिल का गुण प्रकट हो रहा है उसकी गिनती नहीं हो सकती।

ई-गुरूकुलम

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के तत्वावधान में दिनांक ६ से १६ जून, २०२४ से एक ग्रीष्मकालीन ई-गुरूकुलम आयोजित किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य बच्चों में निजानंद की सुगंधी महकाना था। इसमें देश-विदेश से लगभग २०० बच्चों ने भाग लेकर अध्यात्म सहित अनेक विधाओं में ज्ञान अर्जित किया। प्रतिभागियों के योगदान की विस्तृत जानकारी पत्रिका के अगले अंक में प्रकाशित की जायेगी।

क्या कृष्ण प्रणामी और निजानंद धर्म एक हैं ?

प्रीतम

यूएसए

क्या कृष्ण प्रणामी और निजानंद धर्म एक हैं? इस प्रश्न के समाधान के लिए आवश्यक है कि हम निम्न वर्णित प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार करें क्योंकि एक स्वतंत्र विचारधारा वाले मस्तिष्क में इन संशयों का उठना स्वाभाविक है। इन प्रश्नों का उचित समाधान खोजे बिना दुविधा से ग्रस्त सुन्दरसाथ कभी भी उच्चतम आध्यात्मिक उपलब्धियां प्राप्त नहीं कर सकता।

क्या श्री कृष्ण अक्षरातीत हैं ?

श्री कृष्ण की त्रिधा लीला के बारे में सभी सुन्दरसाथ अवगत हैं। श्री कृष्ण नामक तन में तीन प्रकार की शक्तियों ने अलग-अलग काल में लीला की परन्तु यहाँ पर हम केवल अक्षरातीत की लीला की चर्चा करेंगे।

सबसे पहले इस नश्वर ब्रज में ११ वर्ष और ५२ दिन तक श्री प्राणनाथ जी (श्री राज जी) के आवेश तथा अक्षर ब्रह्म की आत्मा ने श्री कृष्ण तन (जीव श्री विष्णु) पर बैठकर लीला की। नाम से केवल शरीर की पहचान होती है, जीव उससे परे रहता है क्योंकि वह हर जन्म में नये नाम के तन पर बैठता है। अन्दर गुप्त रूप से कार्य कर रही अक्षरातीत की शक्ति का नामकरण तो कदापि नहीं हो सकता। लीला के पश्चात् जब वे शक्तियां चली गईं तो श्री कृष्ण व गोपियों के तन मृत्यु को प्राप्त हो गये तथा फिर ब्रह्माण्ड का प्रलय हो गया।

फिर अखण्ड योगमाया में पुनः नये तन धारण करके रास की लीला होती है। इस बार भी श्री कृष्ण के तन में श्री प्राणनाथ जी (श्री राज जी) का आवेश तथा अक्षर ब्रह्म की आत्मा लीला करती है। इस बार एक रात्रि की लीला के पश्चात् सभी शक्तियां चली गयीं, परन्तु वे तन जैसे-के-तैसे बने रहते हैं। अक्षर ब्रह्म की इच्छा पूरी करने के लिए श्री प्राणनाथ जी (श्री राज जी) ने ब्रज की बाल लीला को भी योगमाया की पाँचवी बहिश्त (अखण्ड गोलोक) में अखण्ड कर दिया। इस प्रकार, श्री कृष्ण (विष्णु भगवान) के जीव को मुक्ति मिल गयी तथा ब्रज के अन्य प्राणियों के जीवों को भी अखण्ड ब्रज में मुक्ति मिल गयी।

योगमाया व परमधाम शब्दों से परे हैं, अतः वहाँ नाम नहीं चलते। परन्तु पहचान के लिए हम अखण्ड गोलोक (योगमाया) में विराजमान बाल मुकुन्द व बांके बिहारी को श्री कृष्ण नाम से पुकारते हैं। परमधाम में विराजमान

अक्षरातीत स्वरूप का कुछ भी नाम नहीं है । उस सच्चिदानन्द स्वरूप को सम्बोधनात्मक या गुणात्मक शब्दों से जाना जाता है जैसे प्राणनाथ, राज, धामधनी, आदि। अतः जब हम श्री कृष्ण नाम पुकारते हैं, तो वह योगमाया में विराजमान गोलोकी कृष्ण तक पहुँचता है क्योंकि यह नाम उनकी पहचान है ।

जब श्री देवचन्द्र जी (श्री श्यामा जी) परमात्मा की खोज कर रहे थे, तो उन्होंने हरिदास जी से दीक्षा ली जिन्होंने उन्हें श्री कृष्ण भक्ति का मार्ग दिखाया। अपने आत्मिक स्वरूप की पहचान न होने के कारण अज्ञानतावश वे इस मार्ग पर चल पड़े थे। परन्तु जब वे श्री कृष्ण की मूर्ति को सेवा करने के लिए घर ले जाना चाहते थे तो वह मूर्ति अदृश्य हो गई। बाद में गोलोकी श्री कृष्ण ने हरिदास जी को दर्शन देकर कहा- ''मैं इनकी सेवा सहन नहीं कर सकता हूँ क्योंकि यह अखण्ड परमधाम की आत्मा हैं । इनकी कृपा से ही मुझे मुक्ति मिली है।'' इन कथनों से यह स्पष्ट है कि श्री कृष्ण गोलोक (योगमाया) तक ही सीमित हैं तथा परमधाम में विराजमान स्वरूप उनसे श्रेष्ठ व परे है।

जब श्री देवचन्द्र जी को जामनगर के श्याम जी मंदिर में दर्शन होते हैं तो वे दर्शन देने वाले के स्वरूप को पहचान ही नहीं पाये। जिन श्री कृष्ण की उन्होंने जीवन भर भक्ति की, उन्हें वे पहचान क्यों नहीं सके? ऐसा इसलिए क्योंकि वे श्री कृष्ण थे ही नहीं। श्री कृष्ण तो पहले ही स्पष्ट कर चुके थे कि वे देवचन्द्र जी की कृपा पर आश्रित हैं। यदि परमधाम में विराजमान उनके प्रियतम श्री कृष्ण ही होते तो वे उसी वेशभूषा में दर्शन देते, जिसे देवचन्द्र जी तुरन्त पहचान लेते। परमधाम की श्यामा जी जीवन भर अपने प्रियतम अक्षरातीत को श्री कृष्ण नाम से ढूँढती रहीं, परन्तु परमधाम का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ । अन्ततः धामधनी श्री प्राणनाथ जी (राज जी) ने कृपा करके उन्हें दर्शन व तारतम ज्ञान दिया ।

यदि श्री कृष्ण ही अक्षरातीत होते तो वे उसी नाम से कलियुग में सारे संसार में जाहेर होते। फिर विजयाभिनन्द बुद्ध व इमाम महदी के रूप श्री प्राणनाथ जी ही क्यों जाहेर हुए? उपर्युक्त दृष्टांतों से यह स्पष्ट होता है कि श्री कृष्ण नाम से की गई भक्ति गोलोक तक ही पहुँचती है। परमधाम में श्री प्राणनाथ जी (श्री राज जी) विराजमान हैं।

क्या श्रीमद्भागवत् परमधाम का ज्ञान है ?

कदापि नही। श्री प्राणनाथ जी द्वारा अवतरित श्री मुखवाणी (श्री कुलजम स्वरूप) के अतिरिक्त अन्य सभी ज्ञान स्वप्न की बुद्धि से रचित हैं । श्री मुखवाणी के अवतरण से पहले संसार के किसी भी ग्रन्थ की पहुँच निराकार से परे की नहीं है। जब श्री प्राणनाथ जी (राज जी) ने संसार में आवेश द्वारा आने का मन बनाया, तो अपने आने की भविष्यवाणी सभी धर्मग्रन्थों में ज़बराइल फरिश्ते के माध्यम से संकेत में लिखवा दी।

श्रीमद्भागवत् में कुछ भी ब्रह्मज्ञान नहीं है। जब सुकदेव मुनि ने योगमाया की रास का वर्णन करना चाहा, तो राजा परिक्षित ने उन्हें टोक दिया। तब जाते-जाते ज़बराइल फरिश्ते ने कृपा करके संक्षेप में रास लीला का कुछ वर्णन करवा दिया। दशम् अध्याय में पाँच प्रकरणों में वह वर्णन है, जिसे श्रीमद्भागवत् का सार कहा जा सकता है। जबकि श्री कुलजम स्वरूप में तो स्वयं सच्चिदानन्द की आवेश शक्ति द्वारा रास पर एक बृहद विस्तृत ग्रन्थ अवतरित है । ऐसे में भागवत ग्रन्थ की क्या महत्ता है?

ऐसा कहा जाता है कि जब श्री देवचन्द्र जी चौदह वर्ष भागवत का ज्ञान लेते रहे, तो सुन्दरसाथ ऐसा क्यों न करें? श्री देवचन्द्र जी के अन्दर परमधाम की श्यामा जी का आत्मा थी। सच्चिदानन्द स्वरूप श्री श्यामा जी कभी भी परमधाम से कम किसी भी ज्ञान से संतुष्ट नहीं हो सकती। भागवत के लिखने वाले तो त्रिधा लीला से भी अपरिचित थे, तो फिर वे परमधाम का ज्ञान कहाँ से प्रस्तुत करते? अपने प्रियतम अक्षरातीत की खोज करने के उद्देश्य से देवचन्द्र जी ने भागवत कथा का श्रवण किया। यदि भागवत में परमधाम का ज्ञान होता तो वे अवश्य श्री राज जी व अपने स्वरूप की पहचान कर लेते परन्तु ऐसा नहीं हुआ। जब उन्हें दर्शन मिला, तब वे न तो राज जी को पहचान सके, न ही अपनी पहचान बता पाये। यदि श्रीमद्भागवत् में परमधाम का ज्ञान होता तो तारतम ज्ञान लाने की क्या आवश्यकता थी?

श्री मुखवाणी ब्रह्मज्ञान का सूर्य है। जब सूर्य ही उदय हो गया तो दीपक की क्या आवश्यकता? जो सुन्दरसाथ तारतम ज्ञान छोड़कर भागवत पर समर्पित हैं, वे अवश्य ही अमृतधारा को छोड़कर रेगिस्तान में भटक रहे हैं। क्या वे सच में श्री निजानन्द सम्प्रदाय के अनुयायी हैं?

श्री कृष्ण प्रणामी सम्प्रदाय किसका है ?

सम्वत् १७३५ में हरिद्वार के शास्त्रार्थ में श्री प्राणनाथ जी ने सभी सम्प्रदाय के आचार्यों को पराजित करके 'श्री निजानन्द सम्प्रदाय' का विजय ध्वज लहराया था । उन्होंने माहेश्वर तन्त्र व अन्य ग्रन्थों से अपनी पद्धति सिद्ध की एवं बुद्ध जी का शाका चलाया गया। फिर इस मार्ग का नाम बदलकर 'श्री कृष्ण प्रणामी सम्प्रदाय' किसने रख दिया? निजानन्द सम्प्रदाय के संस्थापक तो सदगुरु श्री देवचन्द्र जी हैं, परन्तु कृष्ण प्रणामी सम्प्रदाय का संस्थापक कौन है? ऐसी मान्यता है कि सम्वत् १९९२ के आसपास नेपाल के धरान में सनातन मत के विद्वानों से हुए शास्त्रार्थ में अपना मार्ग सिद्ध करने के लिए श्री कृष्ण प्रणामी धर्म की नींव रखी गई। क्या इससे पहले किसी ने 'कृष्ण प्रणामी' शब्द सुना भी था? क्या कुछ विद्वानों के विचारों का अन्धानुसरण करना सभी सुन्दरसाथ के लिए उचित है? क्या हम अपनी असली पहचान, जो सदगुरु श्री देवचन्द्र जी तथा श्री प्राणनाथ जी ने दी थी, उसे भुला दें? क्या कृष्ण प्रणामी सम्प्रदाय व निजानन्द सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न हैं? यदि नहीं, तो फिर श्री देवचन्द्र जी तथा श्री प्राणनाथ जी द्वारा चलाये गये निजानन्द सम्प्रदाय से अलग एक नया नाम प्रचलित करने की क्या आवश्यकता है? वल्लभ सम्प्रदाय (श्री कृष्ण की बाल व किशोर लीला को मानने वाले) के सिद्धान्तों को अनुसरण करके श्री कृष्ण प्रणामी समाज कहीं परमधाम के मार्ग से भटक तो नहीं रहा?

जब सदगुरु श्री देवचन्द्र जी इस मार्ग पर चलने वालों को 'सुन्दरसाथ' कहते थे, तो फिर प्रणामी किसे कहते हैं? यदि वे भी सुन्दरसाथ ही हैं, तो सभी मिलकर क्यों नहीं रहते, अलग पहचान बनाने की क्या आवश्यकता है? वाणी का कथन सर्वोपरि है। जब उसमें ऐसा कुछ नहीं लिखा तो हम गलत मार्ग पर क्यों चलें?

श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर किसका है ?

श्री निजानन्द सम्प्रदाय के सभी मंदिरों में श्री प्राणनाथ जी द्वारा अवतरित श्री कुलजम स्वरूप वाणी का ही पूजन किया जाता है। मूर्ति पूजा निषेध है। श्री मुखवाणी को श्री जी का ज्ञानमय स्वरूप मानकर उसकी पूजा की जाती है। प्रत्येक मंदिर का नाम उसके इष्ट के नाम पर होता है, उदाहरणार्थ, राम मंदिर में राम की पूजा होती है, हनुमान मंदिर में हनुमान की पूजा होती है, आदि । जब सच्चिदानन्द स्वरूप श्री प्राणनाथ जी (श्री राज जी) ही हमारे आराध्य हैं, उनकी वाणी की ही हम पूजा करते हैं, तो फिर मंदिर का नाम 'श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर' क्यों?

हमारा धर्म क्या है ?

हम जन्म तथा शरीर से हिन्दू हैं तथा सदा रहेंगे। परन्तु क्या ज्ञान भी हिन्दू या मुसलमान होता है? क्या आत्मा हिन्दू या मुसलमान होती है? क्या परमात्मा हिन्दू या मुसलमान होता है? सम्प्रदाय और भाषा तो मानव की रचना है। जब श्री मुखवाणी में दोनों हिन्दू व मुस्लिम पक्ष का ज्ञान अवतरित हुआ है, तो इसका सीधा अभिप्राय है कि भाषा का भेद न करके हमें वास्तविक ज्ञान को ग्रहण करना है। ब्रह्मज्ञान किसी भी भाषा में हो, सदैव आदरपूर्वक ग्रहण करना चाहिए।

परमधाम की आत्मा हिन्दू तन में आये अथवा मुस्लिम तन में, वह सदैव अक्षरातीत का तन रहेगी। श्री देवचन्द्र जी व प्राणनाथ जी ने भी कितनी मुस्लिम तन में विराजमान आत्माओं को जगाया था। अतः सदा आत्मिक स्वरूप ही महत्वपूर्ण होता है, शरीर या सम्प्रदाय नहीं और आत्मा का प्रमुख धर्म है अपने प्रियतम प्राणनाथ पर प्रेमपूर्वक समर्पण करना।

निष्कर्ष

श्री मुखवाणी को श्री प्राणनाथ जी का ज्ञानमय स्वरूप माना जाता है। वाणी का कथन सर्वोपरि है। अतः अच्छा यही है कि हम अपने सभी व्यक्तिगत संशयों से लेकर समाज की समस्याओं का निवारण वाणी के कथनों के आधार पर करें। सुन्दरसाथ का प्रथम धर्म है कि किसी दबाव में आये बिना हम वाणी की मान्यताओं पर चलकर दिखायें, उसके विपरीत कोई भी कार्य न करें। किसी भी व्यक्ति का कथन वाणी से ऊपर नहीं है। अतः वाणी के निर्देशन में सभी बातों का समाधान किया जाना चाहिए।

बाल एवं युवा शिविर

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा में २४ से ३० मई २०२४ तक एक साप्ताहिक बाल एवं युवा शिविर का आयोजन किया गया जिसमें प्रतिभागियों को निजानन्द दर्शन, नैतिक शिक्षा, चर्चनी, योग, चितवनि, सेवा, खेल, संगीत आदि विभिन्न विषयों का प्रारम्भिक प्रशिक्षण दिया गया। कार्यक्रम के अन्तिम दिन प्रतिभागियों ने अपने अनुभव साझा कर इस शिविर को अत्यंत उपयोगी बताया तथा भविष्य में भी ऐसे शिविरों के आयोजन पर बल दिया।

कर्मयोग ही गीता का प्राण तत्त्व

डॉ. नन्दकिशोर ठाकुर

जयपुर

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता।।[1]

नारायण के मुखारविन्द से निःसृत सर्वशास्त्रमयी गीता भारतीय दर्शन का अद्वितीय ग्रन्थ है। यह भारत का ही नहीं अपितु विश्वमनीषा का महनीय मान बिन्दु है। अतएव न केवल भारतीय अपितु विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में गीता के अनुवाद हुए हैं तथा इसके गूढ़ अभिप्रायों पर मन्थन होता आया है। अनेक प्रतिष्ठित आचार्यों ने गीता पर भाष्य लिखें हैं तथा उन भाष्यों पर विभिन्न टीकाओं, प्रटीकाओं की रचना हुई है। सर्वमङ्गलमयी गीता एक ऐसा दर्पण है, जिसमें सभी दार्शनिक एवं सम्प्रदायविद् अपने सिद्धान्तों के दर्शन करते हैं। गीता के महत्त्व को देखते हुए इसकी गणना प्रस्थानत्रयी में की गई है। किसी भी मत या सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यता इसके वैदुष्यपूर्ण व्याख्या से ही सम्पोषित होती रही है। 'कर्म' शब्द संस्कृत के 'कृ' धातु से बना है जिसका अर्थ 'करना' होता है। इस तरह कर्मयोग से अर्थ उस योग से किया जाता है जिसमें कर्म करते हुए ईश्वर प्राप्ति के प्रयास किये जाते है। कर्म में लीन होना ही कर्मयोग है। मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक पल में कोई न कोई कर्म सदैव करते रहते हैं। ये कर्म किसी न किसी रूप में जाने अनजाने होते ही रहते हैं। ये कर्म कायिक, वाचिक या मानसिक होते हैं। गीता में कहा गया है- ''योगः कर्मसु कौशलम्'' अर्थात् कर्म सिद्धान्त का यह सामान्य नियम है, हम जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। साधक संजीवनीकार के अनुसार कर्म में कुशलता को योग की संज्ञा से आख्यायित करने वाले विद्वान् भ्रान्त हैं तथा इससे संसार में विकर्म को प्रोत्साहन मिलेगा। उन्होंने कर्मों में योग को ही कौशल शब्द से व्यपदिष्ट किया है- ''कर्मसु योगः एव कौशलम्।'' गीता में निष्काम कर्म की प्रधानता है, जहाँ स्वार्थ और फल की चिन्ता नहीं होती है। कर्मफल की इच्छा न रखकर कर्म करना ही निष्काम कर्म है। मनुष्य को हमेशा आसक्ति छोड़कर कर्म करना चाहिए। अतः गीता में भगवान् श्री कृष्ण निष्काम कर्मयोग के सम्बन्ध में कहते हैं-

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये।।[2]

उपर्युक्त श्लोक में शांकरभाष्यानुसार कहा गया है कि योगी लोग यानी 'मैं सब कर्म ईश्वर के लिए ही करता हूँ, अपने फल के लिए नहीं।' इस भाव से जिनमें ममत्व बुद्धि नहीं रहती है ऐसे शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से फल विषयक आसक्ति को छोड़कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। सभी क्रियाओं में ममता का निषेध करने के लिए 'केवल' शब्द का काया आदि सभी शब्दों के साथ सम्बन्ध है। ''कर्मयोग ही गीता का प्राणतत्त्व'' शीर्षकीय प्रस्तुत शोधपत्र में गीतोक्त कर्मयोग की महत्ता को ससन्दर्भ विवेचित एवं विश्लेषित किया जा रहा है। गीता के १८ अध्यायों में १८ योगों का विवेचन है तथापि उनमें कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग की प्रधानता है, जिसमें कर्मयोग को ही गीता का प्राणतत्त्व बतलाया गया है। भगवान् श्री कृष्ण स्वयं गीता के द्वितीय अध्याय में अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा देते हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[3]

उपर्युक्त श्लोक में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है न कि फलाधिकार। शांकरभाष्यानुसार कहा गया है कि तेरा कर्म में ही अधिकार है, फलों में नहीं। तुझे किसी भी अवस्था में कर्मफल की इच्छा नहीं होनी चाहिए। यदि कर्मफल में तेरी तृष्णा होगी तो तुम कर्मफल प्राप्ति का कारण होगा। अतः इस प्रकार कर्मफल प्राप्ति का कारण मत बनो, क्योंकि जब मनुष्य कर्मफल की कामना से प्रेरित होकर कर्म में प्रवृत्त होता है तब वह कर्मफलरूप पुनर्जन्म का कारण बन ही जाता है। इस प्रकार कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति और प्रीति नहीं होनी चाहिए। गीता की रचना से पूर्व वेदों तथा ब्राह्मणों में यज्ञों के अनुष्ठान के रूप में कर्म का अत्यधिक महत्त्व था, भले ही यह कर्म यज्ञशाला तक सीमित रहा हो। लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए अनेक यज्ञ समय-समय पर किये जाते थे। तत्पश्चात् उपनिषदों में वेदोक्त यज्ञनिष्ठ कर्म की अपेक्षा ज्ञान का महत्त्व बढ़ा। लौकिक तथा भौतिक सुख की अपेक्षा शाश्वत सुख की जिज्ञासा तीव्र हुई। परब्रह्म की अनुभूति में परमानन्द की सिद्धि हुई। सांसारिक या परलौकिक सुखभोग की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान मानव का परम लक्ष्य बना। पुराण साहित्य में कर्म एवं ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व बढ़ा। परम पुरुषार्थ की प्राप्ति में ज्ञान के समान भक्ति की भी उपयोगिता मानी गई। फलस्वरूप भक्ति के समर्थन में अनेक सम्प्रदाय एवं दर्शन प्रचलित हुए। अतएव कर्म-ज्ञान-भक्ति यह उत्तरोत्तर क्रम है। गीता में भी यही क्रम देखने को प्राप्त होता है। वस्तुतः गीता का प्रारम्भ कर्मयोग से ही होता है। भक्तियोग पर पहुँचने से पूर्व भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग में दीक्षित करते हैं। महाभारत युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व कुरूक्षेत्र में अपने सगे-सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन युद्ध से विमुख हो जाते हैं। उसके अंग शिथिल हो जाते हैं, मुख सूखने लगता है, शरीर काँपने लगता है तथा मन भ्रमित होता है। यह दृश्य प्रस्तुत श्लोक में द्रष्टव्य है-

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रभतीव च मे मनः।।[4]

गीता में भगवान् ने निष्काम कर्म पर ही बल दिया है। इसके परिणाम में सुख-दुःख की अनुभूति कराने वाली फलासक्ति नहीं होती है। कर्म करने में ही मानव का अधिकार है उसके फल में कभी नहीं। अतः कर्मफल को त्याग कर

निष्काम भाव से किया गया कर्म मानव को पुण्य और पाप से नहीं बाँधता है। अतः मानव को निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए, कर्म का त्याग कभी नहीं। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत श्लोक निभालनीय है-

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।[5]

उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि आसक्ति और कर्मफल की भावना का त्याग आवश्यक है, जिससे जीव जन्म-मरण रूप बन्धन से मुक्त होकर शान्तिमय परमपद को प्राप्त होता है। इसी तथ्य को भागवतपुराण ने भी पुष्ट किया है, जो स्तुत्य है-

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम्।।[6]

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मफल त्याग के साथ-साथ आसक्ति त्याग का भी उपदेश दिया गया है। भगवान् के उपदेश में कहीं-कहीं फल के त्याग की बात कही गई है तो कहीं-कहीं केवल आसक्ति के त्याग की बात है और फिर कहीं फल तथा आसक्ति दोनों के त्याग को युक्तियुक्त माना गया है। जहाँ केवल फल के त्याग की बात है वहाँ आसक्ति के त्याग की भी बात एक साथ समझनी चाहिए और जहाँ केवल आसक्ति के त्याग की बात कही गई है वहाँ कर्मफल के त्याग की बात भी समझनी चाहिए। अतः कर्मयोग है। तभी सार्थक होता है जब फल और आसक्ति दोनों का ही त्याग होता इस विषय में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं ही अपने मुखारविन्द से सर्वथा सर्वमान्य तथ्य को कथ्य बनाया है-

युक्तः कर्मफलं त्यक्तवा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
असक्त ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्तवा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।[7]

इस भौतिकवादी संसार में कर्म की विशेष प्रधानता है। बिना कर्म किये कोई भी सफलता को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। ''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्''[8]। इस शास्त्रीय निष्कर्ष की सम्पुष्टि भी गीता के कर्मयोग सिद्धान्त से होती है। दुर्भाग्य से भाग्यवादी मनुष्य कर्म पर विश्वास नहीं करता है। वह तो सिर्फ भाग्य पर ही विश्वास करता है। वह हमेशा सोचता है कि जो भाग्य में लिखा रहता है वही प्राप्त होता है लेकिन यह मिथ्या चिन्तन है, क्योंकि कर्म करने से भाग्य बनता और बिगड़ता है। अतएव कर्म ही मनुष्य का आधार है। राजर्षि जनकादि ने भी कर्म के द्वारा ही सिद्धि को प्राप्त किया है, जिसकी पुष्टि गीता के द्वितीय अध्याय में की गई है- ''कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः''[9]।

मनुष्य के अच्छे-बुरे दो कर्म होते हैं। अच्छे कर्म के अच्छे परिणाम और बुरे कर्म के बुरे परिणाम होते हैं। अतएव मनुष्य को हमेशा अच्छे कर्मों के प्रति प्रवृत्त होना चाहिए। श्रेष्ठ पुरूषों से हमेशा अच्छे कर्म की प्रेरणा लेनी चाहिए, जिससे कि जीवन धन्य हो सके। गीता के निम्नलिखित श्लोक में भगवान् ने श्रेष्ठ पुरुषों को विशेष सावधान किया है, क्योंकि मानव अनुकरणीय प्राणी हैं। अतएव श्रेष्ठ पुरूष के कर्म श्रेष्ठ एवं अनुकरणीय होना चाहिए, जिससे सामाजिक सद्भाव एवं संतुलन बना रहे-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।[10]

उपर्युक्त श्लोक में शांकरभाष्यकार ने कहा है कि श्रेष्ठ पुरुष जो-जो कर्म करता है, दूसरे लोगों को उसके अनुयायी होकर उस-उस कर्म का ही अचारण करना चाहिए तथा वह श्रेष्ठ पुरुष जिस-जिस लौकिक या वैदिक प्रथा को प्रामाणिक मानता है, लोगों को इसी के अनुसार चलना चाहिए। पंचतंत्र ग्रन्थ ने भी इस सन्दर्भ की पुष्टि की है- ''महाजनो येन गतः स पान्थः।'' मानसकार सन्त शिरोमणि तुलसीदास भी नानापुराणनिगमागमसम्मत श्री रामचरितमानस में गीतोक्त कर्मयोग के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए निम्नलिखित निभालनीय उद्‌गार को इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं-

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।[11]

गीतोपदेश की पृष्ठभूमि पर किंचित विचार करने से कुरूक्षेत्र से पलायन के लिए प्रस्तुत पार्थ को कठोर युद्धकर्म में प्रवृत्त करने हेष्ण प्रेरित करते हैं। अतएव कर्म सिद्धान्त ही गीता का प्रधानपीठ है-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः।।[12]

श्री कृष्ण के इस अंतिम श्लोक से कर्मफल सिद्धान्त का समन्वय इस प्रकार से किया जाय कि कठोर कर्म में प्रवृत्त होकर भी मनुष्य यदि संकल्प-विकल्प के परे शरणागत हो जाये तो परमात्मा अपने कर्मयोग से उसे सर्वदा सर्वथा समस्त पापों से मुक्त कर ही देते हैं। यह भगवान् का कर्मयोग है जिसे वे प्रतिभूतिपूर्वक मोक्षयिष्यामि क्रियापद से रेखांकित करते हैं- ''अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'' कर्मयोग नामक तृतीय अध्याय में भगवान् कर्म की अनिवार्यता के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि कर्म किये बिना कोई भी प्राणी एक क्षण भी नहीं रह सकता। विवश होकर भी प्रकृतिजन्य गुणों से प्रेरित हुआ मानव सारे कर्मों को करता है-

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु निष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।[13]

उपर्युक्त श्लोक में शांकरभाष्यानुसार कहा गया है कि कोई भी मनुष्य कभी क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रहता है, क्योंकि 'सभी प्राणी प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों के द्वारा परवश होकर अवश्य ही कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं। पुनश्च, सभी प्राणी अर्थात् अज्ञानियों के लिए ही कर्मयोग है, ज्ञानियों के लिए नहीं। क्योंकि जो गुणों द्वारा विचलित नहीं किये जा सकते, उन ज्ञानियों में स्वतः क्रिया का अभाव होने से उनके लिए 'कर्मयोग' सम्भव नहीं है। उपनिषद् में भी कर्मयोग पर बल देते हुए कहा गया है कि मनुष्य को हमेशा कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। इस संदर्भ में प्रस्तुत मंत्र निभालनीय है- ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः''[14]। यहाँ ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए कि कर्म करने पर कर्मलेप दुर्निवार्य हो जायेगा। इसी मन्त्र के उत्तरार्द्ध में इस आशंका को निर्मूल करते हुए स्पष्ट उद्‌घोष किया है- ''एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।'' अर्थात् कर्म की

अनिवार्यता सार्वजनीन है किन्तु अनासक्त होकर किया गया कर्म कभी भी बन्धनकारी नहीं हो सकता। पुनः गीता के ही अतिप्रसिद्ध श्लोक इसी तथ्य को सुस्पष्ट करता है-

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।।[15]

अर्थात् निरहंकारी एवं निर्लिप्त बुद्धिवाला व्यक्ति समस्त लोकों को मारकर भी वस्तुतः निर्दुष्ट और निर्दण्ड्य ही रहता है। पुनश्च, शांकरभाष्य में भी कहा गया है कि शास्त्र और आचार्यों के उपदेश से तथा न्याय से जिसका अन्तःकरण अच्छी तरह से शुद्ध एवं संस्कृत हो गया है, ऐसे जिस पुरुष के अन्तःकरण में ''मैं कर्ता हूँ'' इस प्रकार की भावना प्रतीत नहीं होती है, जो ऐसा समझता है कि अविद्या से आत्मा में अध्यारोपित, ये अधिष्ठानादि पाँच हेतु ही समस्त कर्मों के कर्ता हैं, मैं नहीं हूँ। मैं तो केवल उनके व्यापारों का साक्षी मात्र प्राणों से रहित, मन से रहित, शुद्ध, श्रेष्ठ अक्षर से भी पर केवल और अक्रिय आत्मस्वरूप हूँ। ऐसा ज्ञानी इन समस्त लोगों अर्थात् सभी प्राणियों को मारकर भी वास्तव में नहीं मारता है। अर्थात् हनन क्रिया नहीं करता और उसके परिणाम से अर्थात् पाप के फल से भी नहीं बँधता है।

अतः गीता में कर्म के बन्धन से मुक्त होने के लिए हमें योग युक्त होकर कर्म करना चाहिए। वस्तुतः योगी ही निष्काम एवं अनासक्त हो सकता है क्योंकि इच्छा-त्याग करके कर्म करने वाला साधारण व्यक्ति नहीं होता हैं। गीता के अनुसार जो कर्म निष्काम भाव से ईश्वर के लिए किये जाते हैं वे बन्धन उत्पन्न नहीं करते हैं। वे मोक्ष रूप परमपद की प्राप्ति में सहायक होते हैं। कर्मफल तथा आसक्ति से रहित होकर ईश्वर के लिए कर्म करना वास्तविक रूप से 'कर्मयोग' है और इसका अनुसरण करने से मनुष्य को अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। इस प्रकार आत्मज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति ही गीता के अनुसार वास्तविक रूप से 'कर्मयोगी' हो सकता है। उपक्रमोपसंहार की दृष्टि से भी कर्मयोग ही आपाततः गीता का प्राणतत्त्व सिद्ध होता है।

संदर्भ

१-६. महाभारत, भीष्मपर्व, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भगवदगीता, श्रीमद्भागवत पुराण, श्रीमद्भगवद्गीता - ०१/४३ - ०५/११ - ०२/४७ - ०१/२८-३० - ०२/५१ - १०/१४/५८ - ०५/१२, ०३/१६, १८/०६ श्रीमद्देवी भागवत महापुराण - ०६/०६/६७ श्रीमद्भगवद्गीता।

१०. श्रीमद्भगवद्गीता।

११. श्रीरामचरित मानस चौथी चौपाई।

१२. श्रीमद्भगवद्गीता।

१३. श्रीमद्भगवद्गीता।

१४. ईशावास्योपनिषद्।

१५. श्रीमद्भगवद्गीता - ०३/२०-०३/२१ - अयोध्या काण्ड, दोहा २१८ के बाद - १८/६६ - ०३/०५ - मंत्र संख्या- ०२ - १८/१७।

क्या निजानन्द सम्प्रदाय हिंदू विरोधी है ?

आचार्य सुभाष

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

श्री प्राणनाथ जी ने 'किरंतन' ग्रन्थ में 'त्रिलोकी में उत्तम खण्ड भरतनो तामें उत्तम हिन्दू धर्म' कहकर अपने धर्म को हिन्दू ही पुष्ट किया हैं। आजकल हमारे समाज में ऐसी धारणा चल पड़ी है कि निजानन्द सम्प्रदाय हिन्दू विरोधी सम्प्रदाय हैं। संभवतः इसका कारण इसके प्रमुख ग्रंथ 'श्री कुलजम स्वरूप साहेब' की लगभग एक-तिहाई चौपाइयों कतेब पक्ष की होना है।

उल्लेखनीय है कि श्री निजानन्द सम्प्रदाय ये कभी नहीं मानता कि श्री कृष्ण जी माखन चोर थे, गौएँ चराते थे, गोपियों संग रास रचाते थे, राधा संग प्रेम प्रसंग में लिप्त थे, कुब्जा दासी से समागम किए थे, एवं परमात्मा का अवतार थे। ऐसा भागवताचार्य मानते हैं।

इसके विपरीत श्री निजानन्द सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि श्री कृष्ण जन्म से लेकर ४८ वर्ष तक ब्रह्मचारी थे, केवल एक रुक्मणी से विवाह करके भी उसके साथ विष्णु पर्वत पर उपमन्यु ऋषि के आश्रम में १२ वर्ष ब्रह्मचर्य तप करके अपने समान तेजस्वी पुत्र प्रद्युम्न को उत्पन्न किया, योगेश्वर होने से वे नित्य ध्यान, प्राणायाम, संध्या, अग्निहोत्र आदि करते थे, अनेकों प्रकार की युद्ध कलाओं में दक्ष थे, उनका प्रिय शस्त्र सुदर्शन चक्र था, महान विचारक थे, अद्वितीय योद्धा थे, एवं भारतवर्ष के समस्त गणराज्यों को यादवों के संघर्ष तले एक करने वाले महान राजनीतिज्ञ थे।

इसी के साथ, श्री निजानन्द सम्प्रदाय रामचरितमानस के आधार पर यह नहीं मानता कि हनुमान जी बंदरमुखी थे, न ही उन्होंने पूँछ से लंका दहन किया था। बल्कि वाल्मिकी रामायण के आधार पर ऐसा मानता है कि हनुमान जी दक्षिण भारत की क्षत्रिय शाखा जो वन में बस्ती है उसमें से अखंड ब्रह्मचारी, महाबली, व्याकरण के धुरंधर विद्वान और वेदों के ज्ञाता थे।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय मृतक श्राद्ध, तर्पण, मरे हुए व्यक्ति के नाम पर मुंडन आदि को नहीं मानता बल्कि जीवित माता-पीता की सेवा, उनके इच्छानुकूल भोजन-दुग्धादि का सेवन कराना ही श्राद्ध और तर्पण है। मृतकों का श्राद्ध का विधान वाणी, बीतक एवं वैदिक ग्रन्थों में नहीं है। यही नहीं, श्री निजानन्द सम्प्रदाय गरुड़, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भागवत आदि १८ नवीन पुराणों को नहीं मानता क्योंकि इनमें परस्पर विरोधाभास, देवी- देवताओं के बारे

में अभद्र अश्लील कथाएँ वर्णित हैं, अपने-अपने देवों की स्तुति और अन्यों की निंदा है, जिन्हें व्यासकृत माना जाता है जबकि वे पक्षपातियों के द्वारा समय-समय पर रचे हुए कपोल कल्पित ग्रंथ हैं ।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय के अनुसार, चारों वेदों के चार ब्राह्मण ग्रंथ (ऐतरेय, तैत्तरीय, शतपथ, गोपथ) को ही पुराण कहते हैं, जिनमें आश्वलायन, याज्ञवल्क्य, जैमीनि आदि ऋषियों-ऋषिकाओं का प्रमाणिक इतिहास है ।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह नहीं मानता कि हिंदुओं के सारे संस्कृत शास्त्र प्रमाणिक हैं बल्कि केवल मूल संहिता भाग वेद और वेद के सिद्धांतों के अनुकूल चलने वाले ग्रंथ (दर्शन, उपनिषद्, अरण्यक, वेदांग, रामायण, मनुस्मृति, महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र) आदि ही प्रमाणिक हैं।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह भी नहीं मानता कि पत्थर के लिंग पर दूध चढ़ाने, मूर्ति को वस्त्र पहनाने, उसके आगे माथा टेकने और भोग लगाने, हाथ जोड़ने, धूप अगरबत्ती करने, ढोल बाजे बजाने और नाचने आदि अँधविश्वास से परमात्मा की भक्ति होती है।

इसके विपरीत इसकी मान्यता है कि पतंजलि ऋषि के योगशास्त्र की उपासना विधि (यम नियम पालन, प्राणायाम, यथार्थ मंत्र का जप, ध्यान आदि) से ही परमात्मा की उपासना होती है। इसी विधि से हमारे पूर्वज ऋषि मुनि, दुर्गा, राम, कृष्ण, सीता, सावित्री, शिव, हनुमान आदि उपासना किया करते थे। अतः हमें भी ऐसे ही करनी चाहिए। श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह नहीं मानता कि तीर्थ यात्राएँ करने, गंगा स्नान,पंडे पुजारियों को दान देने, और व्यर्थ के पाखंड करके धन, समय, ऊर्जा, आदि व्यर्थ करने से मनोकामना पूरी होती है।

बल्कि इसकी मान्यता है कि ऋषि परम्परा के अनुसार ध्यान, वातावरण की शुद्धिकरण करने से ३३ कोटि (३३ प्रकार के) देव - ११ रुद्र, ८वसु, १२ आदित्य मास, इन्द्र (विद्युत और प्रजापति) - की पुष्टि होती है। इससे वृष्टि आदि समय पर होकर औषधियों का पोषण होता है,फल फूल शाक सब्जी अन्न आदि की वृद्धि और शुद्धता होती है। ऐसा एक यज्ञ करने से हज़ारों मनुष्यों का उपकार होता है जैसाकि गीता में भी कहा है कि एक यज्ञ में ही भरपूर पुण्य मिलता है ।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह नहीं मानता कि मृतक का श्राद्ध करने, पंडों का पेट भरने,अस्थियाँ गंगा में बहाने आदि से मृतक के जीव को शांति मिलती है। इसका मानना है कि व्यक्ति अपने किये कर्मों का स्वयं उत्तरदायी है,शव का दाह संस्कार (नरमेध यज्ञ) करने के बाद घर में वायु शुद्धि हेतु गुगल आदि का धूप करवाना चाहिये, उसके बाद मृतक की अस्थियों को जल में डालने के बजाए किसी खेत में खाद के रूप में प्रयोग करना चाहिये। इसके बाद शेष कुछ भी नहीं करना चाहिए।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह नहीं चाहता कि करोड़ों,अरबों, खरबों का धन मंदिरों में दान देकर उसे व्यर्थ किया जाये, जिसे पंडे पुजारी बिना पुरुषार्थ की कमाई मुफ्त में खाए। न ही यह चाहता है कि उस धन का ७० प्रतिशत भाग मस्जिदों और चर्चों पर खर्च हो।

इसके विपरीत श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह चाहता है कि इस अपार धन से विश्वविद्यालय, वैदिक गुरुकुल, संस्कृत पाठशालाएं, वैदिक विज्ञान पर शोध हेतु प्रयोगशालाएं आदि स्थापित की जायं जिससे हमारा देश शीघ्रता से संस्कृत राष्ट्र बनने की ओर अग्रसर हो और वही प्राचीन आर्यावर्त देश बने। साथ ही, अनाथाश्रम आदि खोले जायें जिससे कि हिंदू बच्चे मदरसों और कॉन्वेंट आदि में न जाकर मुसलमान ईसाई होने से बचे ।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह नहीं चाहता कि खोखले लोकतंत्र के आधार पर राजनैतिक पार्टियाँ हिंदूओं को जातियों में तोड़कर वोट लेती रहें और एक समुदाय विशेष का पोषण करती रहे। हिंदू केवल झंडा उठाकर हिंदू राष्ट्र का स्वप्न मात्र ही देखता रहे और भ्रष्टाचारी नेता हिंदुओं को बरगला कर वोट लेते रहें और शोषण करते रहें।

श्री निजानन्द सम्प्रदाय यह चाहता है कि मनुस्मृति के आधार पर शासन तंत्र स्थापित किया जाए और वैदिक शासन की नींव रख सच्चा हिंदुत्व स्थापित किया जा सके जैसे महाराजा छत्रसाल जी ने किया था ताकि हमारा राजा पूरी पृथ्वी को एकछत्र वैदिक गणराज्य में लाकर युधिष्ठिर, विक्रमादित्य की भांति खंडित मानवीय शासन के स्थान पर अखंडित वैदिक चक्रवर्ती राज्य स्थापित करें। तो ऐसा मानने से निजानन्द सम्प्रदाय हिंदू विरोधी कैसे है? इसका उत्तर 'न' ही होगा।

अमेरिका में ब्रह्मवाणी और आत्म-जाग्रति शिविर

यह प्रसन्नता का विषय है कि धामधनी की मेहर से श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के विद्वान डॉ प्रवीण बत्रा की १६-दिवसीय अमेरिका की आध्यात्मिक यात्रा सफलतापूर्वक संपन्न हुई। इस दौरान उन्होंने अनेक स्थानों, यथा शिकागो, ट्रॉय तथा कोलंबस, ओहाईओ, मिशिगन, एलाबामा, केण्टकी, इंडियाना पॉलिस आदि स्थानों पर आयोजित आत्म-जाग्रति शिविरों में भाग लिया और ब्रह्मवाणी चर्चा के माध्यम से स्थानीय सुंदरसाथ को आत्म-जाग्रति हेतू प्रेरित किया। इन सभी कार्यक्रमों में स्थानीय सुंदरसाथ के अतिरिक्त प्रवाहीजन ने भी बड़ी संख्या में भाग लेकर ब्रह्मवाणी का लाभ लिया। इसके साथ ही, डॉ. बत्रा द्वारा उपस्थित श्रोताओं द्वारा पूछे गए प्रश्नों का समुचित समाधान किया गया।

शिकागो शिविर में ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित Nijanand Swami-Comics का भी विमोचन हुआ। इसी प्रकार, इंडियाना पॉलिस में एक सुंदरसाथ के साथ-साथ स्वामीनारायण एवं स्वाध्याय जैसे कई मत वालों को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया जिसमें डॉ. प्रवीण द्वारा निजानंद सम्प्रदाय के सिद्धांतों तथा गौरवमयी इतिहास से परिचित करवाया गया। यहां भी एक नयी पुस्तक "Elixir of Enlightenment" का विमोचन हुआ। यहां भारतीय संस्कृति की उदारवादी विचारधारा का एक प्रत्यक्ष चित्रण दृष्टिगोचर हुआ।

विदेशों में निवास कर रहे सुंदरसाथ में ब्रह्मवाणी के प्रति बढ़ती जागरूकता तथा आस्था निश्चित रूप से एक सकारात्मक संदेश है। प्रियतम परब्रह्म की महिमा चतुर्दिश फैले, यही हमारा संकल्प है। डॉ. प्रवीण की यह यात्रा समाज के सभी सुंदरसाथ के लिये एक प्रेरणा है कि किस प्रकार विदेश में रह कर भी हम अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत को पल्लवित कर सकते हैं। निजानंद का जयघोष इसी प्रकार गूंजता रहे, यही महत्वपूर्ण है। आशा है भविष्य में देश-विदेश के सभी सुंदरसाथ इसी प्रकार ब्रह्मवाणी की ज्योति को प्रज्वलित करते रहेंगे।

-हितेश, जगदीश व रोहित पटेल

लीला – निजलीला

सुदर्शन तनेजा

जयपुर

'लीला' यानि खेल चरित। 'निजलीला' यानि प्रत्येक स्वरूप द्वारा खेली गई अपनी-अपनी लीला। प्रति वर्ष भारत के प्रत्येक कोने में रामनवमी पर रामचरित मानस आधारित लीला का नाट्य रूप देखा जाता है। इसी प्रकार, जन्माष्टमी पर श्री कृष्ण की लीलाओं पर आधारित विभिन्न झांकियाँ सजायी जाती हैं। इस्लामी संस्कृति में मुहम्मद साहब को एवं ईसाई संस्कृति, पंजाब एवं सिंघ संस्कृति में क्रमशः ईशामसीह, गुरुनानक, टेऊंराम, महावीर जैन स्वामी देव पुरुषों के जीवन चरित को लीला रूप में दर्शाया जाता है। ये सब भारतीय संस्कृति के विभिन्न धर्म ग्रन्थों एवं वेद उपनिषदों में अखंड धरोहर के रूप में अंकित है।

'अर्श' वह अखंड धाम-परमधाम है। जहां ब्रह्मात्माएं अपने सच्चिदानंद स्वरूप के साथ अखंड लीला में लीलारत है। जिसका जर्रा-जर्रा शुद्धाद्वैत के रूप में है। यथा इसका ज्ञान हमें श्री मुखवाणी श्री कुलजम स्वरूप में श्री निजानन्द सम्प्रदाय उर्फ प्रणामी धर्म, सुन्दरसाथ को वरदान स्वरूप में श्री राज जी ने दिया है। कोई भी जिज्ञासु जन इस लाभ से लाभन्वित हो सकता है।

फर्श यानि मृत्युलोक अर्थात् कालमाया का ब्रह्मांड जिसमें त्रिधा लीला, ब्रज-रास और जागनी लीला अखंड लीला सबलिक ब्रह्म, केवल ब्रह्म और योगमाया के ब्रह्मांड में हो रही है। इसका प्रतिबिम्ब स्वरूप इस भारत धरती पर भी ब्रज वृन्दावन में अलग-अलग कालखंड में देखने को मिलता है।

अस्तु! बृज गोकुल में खेली गई श्री कृष्ण की बाल लीला, किशोर लीला का रोचक वर्णन सूरसागर में सूरदास जी ने किया है। श्री मुखवाणी के प्रथम ग्रंथ 'रास' में इसका सुखद वर्णन मिलता है। यथा ''योगमाया ने देह धरी....।'' परिक्रमा, सागर, सिनगार ग्रन्थ में इस लीला का साक्षात् वर्णन अनुभव किया जा सकता है। जागनी ब्रह्मांड में तीन स्वरूपों की लीला बसरी, मलकी और हकी स्वरूप का वर्णन स्वरूप साहब में एवं बीतक साहब में भी मिलता है। जागनी लीला को छः दिन की लीला के रूप में भी हम समझ सकते हैं।

प्रथम दिन धनी देवचन्द्र जी द्वारा नवतनपुरी धाम में। द्वितीय दिन श्री मिहिरराज ठाकुर की श्री देवचन्द्र की शरण में आने की लीला। तीसरे दिन की स्वामी प्राणनाथ स्वरूप सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करते हुए, धर्म रक्षार्थ

उपयुक्त राजा की खोज में महाराजा छत्रसाल जी के साथ भेंट की लीला। चौथे दिन पन्ना धाम में साक्षात् स्वरूप प्राणनाथ जी को मानकर ब्रह्मात्माओं द्वारा की गई सेवा। पाँचवें दिन की श्री छत्रसाल के नेतृत्व में ब्रह्ममुनियों को भारत के प्रत्येक कोने में श्री मुखवाणी का प्रसार-प्रचार करने के भाव से की गई लीला। छठे दिन की चल रही वर्तमान लीला, जिसमें हम सभी सुन्दरसाथ संभागी है। श्री राज की कृपा से उनके हुक्म से प्रत्येक सुन्दरसाथ सेवारत है।

अन्त में, हम सभी सुन्दरसाथ को श्री राज जी का शुक्रिया अदा करना चाहिए कि हम इस लीला में सम्भागी बने हैं। 'शुकराना' बीतक साहब में विशेष रूप से कई बार किया गया है। हर पल, हर श्वास में उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का शुक्रिया अदा करें। जिनकी कृपा से हमारा अस्तित्व इस धरती पर है और इस सम्पूर्ण लीला को आत्म स्वरूप में देखा है, खेला है, अनुभव किया है येन-केन प्रकरेण। इति।

मूलस्वरूप किशोर-किशोरी, निरख सखी सच्चिदानंद जोड़ी।
भोम तले की निरख छवि न्यारी, बैठे सिंघासन प्यारो-प्यारी।।

आत्मिक रिमाइंडर -1

१. निःस्वार्थ सेवा से ही अहंकार नष्ट होता है।
२. हे प्रियतम! मेरे नैनों से पलभर के लिये भी आप ओझल न हों।
३. मुझे अपने प्रियतम के प्रति एकनिष्ट होना है।
४. एक भी स्वांस व्यर्थ किए बिना धनी को रिझाना है।
५. माया की नींद हटते ही परमधाम के अखंड सुख का रसास्वादन कर सकते हैं।
६. प्रियतम मुझे इस संसार के स्वाद नहीं परंतु अखंड धाम का रस लेना है।
७. मायावी सुखों का हवाई महल भवसागर में डुबा देगा।
८. प्रियतम आप ही इस मायावी नींद को हटा सकते हो।
९. सांसारिक मोह की जगह धनी का मोह रखना चाहिए।
१०. मेरे धाम हृदय में अक्षरातीत श्री राजजी के चरण कमल बसते हैं।
११. तारतम ज्ञान से ही इस संसार को अखंड मुक्ति मिलेगी।
१२. मेरे राजरसिक आपकी शोभा शब्दातीत है।
१३. प्रियतम आप ही मुझे इस माया के मुख से निकाल सकते हो।
१४. धामधनी आप हमारी आत्मा के प्राणजीवन हैं।
१५. माया से अपनी दृष्टि हटाकर परमधाम की तरफ़ करना है।
१६. मायावी सुखों में फँसना नहीं है बल्कि तारतम वाणी के प्रकाश में जागृत होना हैं।
१७. प्रियतम आप पल पल हमारे साथ हैं और आपके साथ ही मुझे परमधाम जाना है।
१८. प्रियतम के चरणों को दृढ़तापूर्वक पकड़े रखना है।

- श्री प्राणनाथ जी वाणी परिवार

श्री बीतक साहेब प्रश्नोत्तरी-1

श्री प्राणनाथ जी वाणी परिवार

1. श्री बीतक साहेब में 'अथ तीन स्वरूपों की बीतक' से आशय से श्री बीतक साहेब में किन तीन स्वरूपों का वर्णन है?

अ) ब्रज, रास, जागनी ब) बसरी, मलकी, हकी

द) श्री देवचंद्र जी, श्री प्राणनाथ जी, श्री महाराजा छत्रसाल जी

2. श्री बीतक साहेब में कितने युगों के राजाओं का वर्णन है?

अ) दो ब) तीन

द) चार

3. कलयुग के किस राजा के समय में श्री विजया अभिनंदन बुध जी अवतार के जाहिर होने का वर्णन है?

अ) क्रतदत्त ब) औरंगजेब

स) हुमायूं द) गौरी

4. 'अब कहूं फेर के मूलमिलावे की बीतक' में मूल मिलावा किसे कहा है?

अ) रंगमहल को ब) अक्षर धाम को

स) प्रथम भोम की पहली गोल हवेली द) पूरा परमधाम

5. प्रथम भोम की पहली गोल हवेली को मूल मिलावा क्यों कहा है?

अ) क्योंकि वह गोल हवेली है

ब) क्योंकि वहां सखियों के मूल तन विराजमान है

स) क्योंकि वहां अक्षर ब्रम्ह जी हैं

द) मूल मिलावा नाम बहुत पहले से ही है उसका

6. खेल और लीला को देखने की इच्छा श्री राज जी ने किनके मन में पैदा की ?

अ) श्यामा जी सिर्फ ब) सखियों के मन में सिर्फ

स) अक्षर ब्रह्म जी के मन में सिर्फ द) सखियां, श्यामा जी और अक्षर ब्रह्म जी

7. खेल के कितने तकरार (भाग) श्री बीतक साहेब में बताए गए हैं?

अ) 5 ब) 6

स) 3 द) 10

8. खेल के तीन तकरार कौन कौन से हैं जिनमें लीला हुई?

अ) 2 ब्रज के और 1 जागनी का ब) ब्रज के तीनों

स) जागनी के तीनों

द) ब्रज (कालमाया), रास (योगमाया), जागनी (कालमाया)

9. ब्रज में कितने समय तक श्री राज जी ने सखियों के संग लीला की?

अ) 11 वर्ष ब) 13 वर्ष

स) 52 दिन द) 11 वर्ष 52 दिन

10. ब्रज लीला पूर्ण करके हम रास खेलने कहाँ गए?

अ) परमधाम ब) योगमाया

स) जागनी ब्रह्मांड

सभी प्रश्नों के उत्तर :

1. श्री देवचंद्र जी, श्री प्राणनाथ जी, श्री महाराजा छत्रसाल जी
2. चार
3. औरंगजेब
4. प्रथम भोम की पहली गोल हवेली
5. क्योंकि वहां सखियों के मूल तन विराजमान है।
6. सखियां, श्यामा जी और अक्षर ब्रह्म जी
7. 3
8. ब्रज (कालमाया), रास(योगमाया), जागनी (कालमाया)
9. 11 वर्ष 52 दिन
10. योगमाया

अठारहवां वार्षिकोत्सव

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा

तुम आए सब आइया, दुख गया सब दूर।
कहे महामती ए सुख क्यों कहूं, जो उदया मूल अंकूर।।

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी!
प्रेम प्रणाम!

आपको हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की छत्रछाया एवं परमहंस महाराज श्री रामरतनदास जी की कृपा व धर्मवीर जागनी रत्न सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा से श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा, सहारनपुर का अठारहवां वार्षिकोत्सव दिनांक 14/09/2024 से 20/09/2024 तक होना निश्चित किया गया है, जिसमें चर्चनी, ध्यान, वाणी गायन व प्रतिदिन श्री मुखवाणी की विधिवत चर्चा होगी। अतः आप सभी से विनम्र अनुरोध किया जाता है कि सभी सुन्दरसाथ एवं धर्म प्रेमी सज्जन अधिक से अधिक संख्या में पधार कर ब्रह्मवाणी का दर्शन एवं चर्चा रूपी अमृतरस का पान करें।

कार्यक्रम

(1) सप्त दिवसीय श्री मुखवाणी पारायण का शुभारम्भ, ध्यान, वाणी गायन एवं चर्चा
(2) 15-19 सितम्बर तक- चर्चनी, ध्यान, श्री मुखवाणी चर्चा वाणी गायन, बच्चों की प्रतियोगिता
(3) 20 सितम्बर- चर्चनी, ध्यान वाणी गायन, श्री मुखवाणी चर्चा तथा सप्त दिवसीय पांच पारायणों का समाप्ति पूजन एवं भण्डारा

विशेष सूचना- (1) कृपया अपने साथ आवश्यक वस्तु एवं ओढ़ने की चादर अवश्य लायें।
(2) सादे वस्त्रों में ही आपकी शोभा है।

आपके आगमन की प्रतीक्षा में सम्पूर्ण
ज्ञानपीठ परिवार (विद्वत् मण्डल एवं ट्रस्ट मण्डल)
आपका राजन स्वामी

निवेदक
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट
नकुड़ रोड़, सरसावा जिला सहारानपुर (उ.प्र.)
दूरभाषरू 917088120381

संरक्षक	उपसंरक्षक	उपाध्यक्ष	उपाध्यक्ष	अध्यक्ष	महासचिव
श्री अरूण मित्ढा	श्री माणिक भाई	श्री कमलेश भाई	श्री देवराम भाई	श्री ओमकार सिंह	श्री राजेन्द्र सिंह चौहान
9212324175	0982408754	9824391653	9825235750	6386476985	9412016322

SPJIN 7533876060 Spjin app www.Spjin.org

विनम्र निवेदन

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी! वर्तमान समय में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में शिक्षण, साहित्यिक एवं निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। जिन सुन्दरसाथ ने इन कार्यों के लिए अपनी सेवाएं लिखवायी है या स्वतः उनके मन में सेवा करने की इच्छा है, कृपया वे इन खातों में धनराशि भेजने का कष्ट करें। इस बात का ध्यान रखा जाय कि जिस सेवा की धनराशि भेजी जा रही है, मात्र उसी खाते की C.B.S. A/C संख्या में भेजें।

प्रणाम जी

1. खाताधारक का नाम – श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट खाता संख्या – 3290805513	
2. खाताधारक का नाम – श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र, पन्ना खाता संख्या – 3759122888,	
सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, पता : शाखा–सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र. – 247232 MICR Code - 241016005 IFSC Code CBIN0282158	**सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया,** पता : शाखा – पन्ना IFSC Code CBIN0282158

सामान्य खाता संख्या
1335000100111916
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

साहित्य खाता संख्या
1335000100118751
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

भवन निर्माण खाता संख्या
34971188767
भारतीय स्टैट बैंक
(11439) सरसावा, सहारनपुर
उत्तरप्रदेश, पिन- 247232
IFS CODE- SBIN0011439

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ,
सरसावा से प्रकाशित साहित्य की सूची

क्र. सं.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	श्री कुलजम स्वरूप (मूल)	700.00
2.	श्री बीतक साहेब टीका	400.00
3.	श्री रास टीका	150.00
4.	श्री प्रकाश टीका	300.00
5.	श्री कलश टीका	225.00
6.	श्री खटरूती टीका	80.00
7.	श्री किरन्तन टीका (हिन्दी)	300.00
8.	श्री किरन्तन टीका (अंग्रेजी)	350.00
9.	श्री किरन्तन टीका (नेपाली)	300.00
10.	श्री खुलासा टीका	250.00
11.	श्री सनंध टीका	300.00
12.	श्री खिलवत टीका	180.00
13.	श्री परिक्रमा टीका	275.00
14.	श्री सागर टीका	170.00
15.	श्री सिनगार टीका	300.00
16.	श्री सिन्धी टीका	150.00
17.	श्री मारफत सागर टीका	180.00
18.	श्री कियामत नामा टीका	160.00
19.	श्री मुखवाणी संगीत	150.00
20.	विद्वददमनी	200.00
21.	परमधाम पट दर्शन (3 डी)	600.00
22.	धाम सुषमा	60.00
23.	जागो और जगाओ	100.00
24.	दोपहर का सूरज	60.00
25.	प्रेम का चाँद	65.00
26.	निजानन्द योग	60.00
27.	हमारी रहनी	50.00
28.	ब्रह्माण्ड रहस्य	40.00
29.	श्री मद्भागवत यथार्थम्	30.00
30.	ध्यान की पुष्पांजली	70.00
31.	कड़वे सच	50.00
32.	तमस के पार (बड़ी)	40.00
33.	तमस के पार (छोटी)	20.00
34.	तमस के पार (पंजाबी)	40.00
35.	बोध मंजरी (हिन्दी)	15.00
36.	बोध मंजरी (नेपाली)	15.00
37.	बोध मंजरी (उड़िया)	15.00
38.	शाश्वत सत्य की ओर	15.00
39.	सत्य को बाटो (नेपाली)	15.00
40.	संसार से परमधाम की ओर	20.00

क्र. सं.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
41.	श्री प्राणनाथ महिमा	20.00
42.	संस्कार पद्धति	
43.	निजानन्द संस्कार पद्धति	15.00
44.	सेवा पूजा	30.00
45.	मूल स्वरूप की ओर	80.00
46.	चितवनी	5.00
47.	आर्ष ज्योति	120.00
48.	तारतम के निर्झर	70.00
49.	तारतम पीयूषम्	70.00
50.	हमारी शाश्वत सम्पदा	60.00
51.	खाद्य परिशीलन	250.00
52.	विनाश का प्रर्याय मांसाहार	60.00
53.	विराट नक्शा (केलेण्डर रूप में)	50.00
54.	सौवं क्यामतनामा	90.00
55.	अनमोल मोती	5.00
56.	सागर के मोती	10.00
57.	नित्य पाठ	5.00
58.	ये स्वर्णिम पल	10.00
59.	मुख्तार हिन्द	20.00
60.	शब–ए–मेयराज	15.00
61.	अफलातूनी इलम	20.00
62.	बुलन्द मुकदमा	40.00
63.	झूठ ही झूठ	60.00
64.	यथार्थ दीपिका	30.00
65.	प्रश्नमाला	5.00
66.	निजानन्द चित्रकथा	30.00
67.	शेख जी मीर जी का बयान	20.00
68.	फरमान	30.00
69.	स्वास्थ्य के प्रहरी	30.00
70.	सत्यांजलि	50.00
71.	बीतक से शिक्षा	40.00
72.	चितवनी महिमा	80.00
73.	हयातुनबी	40.00
74.	Food for Thought	250.00
75.	Darkness to Brightness	60.00
76.	Mystic Universe	80.00
77.	Chest of Mystic Spiritual Knowledge	25.00
78.	Descent of the Absolute Divine	80.00
79.	Get Introduced to the Nijanand School	120.00
80.	Pearls of Spiritual Wisdom	30.00

बुक पोस्ट

RNI:UPHIN/2016/46009
RNP/SHN/18/2022-24

सेवा में

प्रकाशन कार्यालय :
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
सरसावा, नकुड़ रोड़
जिला सहारनपुर-247232 (उ.प्र.)
मोबाइल : 7088120381